शैक्षणिक संदर्भ

वर्ष: 17 अंक 98 (मूल क्रमांक 155)
नवम्बर-दिसम्बर 2024 मूल्य: ₹ 50.00

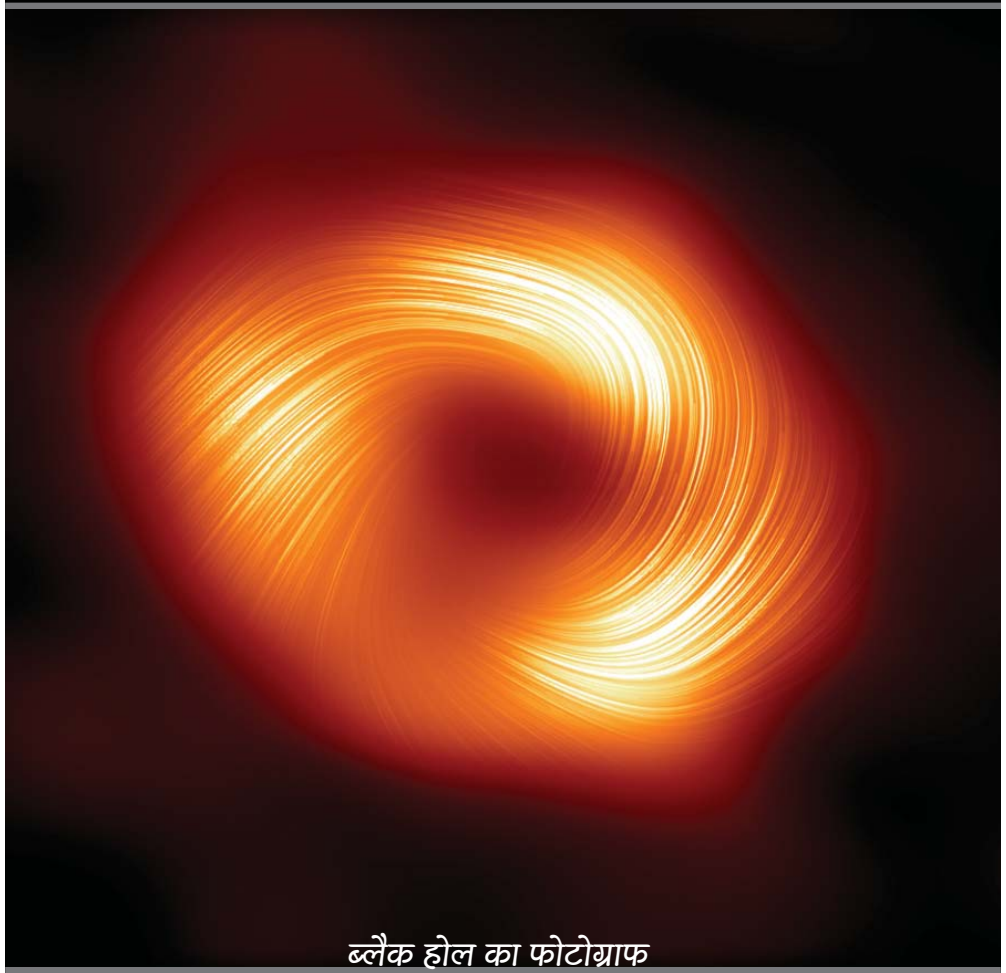

ब्लैक होल का फोटोग्राफ

सम्पादन
राजेश खिंदरी
माधव केलकर

सह-सम्पादक:
पारुल सोनी

सहायक सम्पादक
अतुल वाधवानी

सम्पादकीय सहयोग
हिमांशु बावनकर

सम्पादकीय सलाहकार
सुशील जोशी
उमा सुधीर

आवरण: राकेश खत्री

वितरण: झनक राम साहू

सहयोग: कमलेश यादव

शैक्षणिक

संदर्भ

वर्ष: 17 अंक 98 (मूल क्रमांक 155)
नवम्बर-दिसम्बर 2024

मूल्य: ₹ 50.00

एकलव्य फाउण्डेशन
जमनालाल बजाज परिसर
जाटखेड़ी, भोपाल-462 026 (म.प्र.)
फोन: +91 755 297 7770, 71, 72, 4200944
www.sandarbh.eklavya.in
सम्पादन: sandarbh@eklavya.in
वितरण: circulation@eklavya.in

अब *संदर्भ* आप तक पहुँचेगी रजिस्टर्ड पोस्ट से।

सदस्यता शुल्क	एक साल (6 अंक)	तीन साल (18 अंक)	आजीवन
	450.00	1200.00	8000.00

मुखपृष्ठ: हमारी आकाशगंगा 'क्षीरमार्ग' (मिल्की वे) के केन्द्र में मौजूद अतिविशाल कृष्ण विवर, यानी ब्लैक होल, 'सैजिटेरियस ए*' (या, धनु ए*) की तस्वीर। इवेंट होराइज़न टेलिस्कोप (ईटीएच) द्वारा खींची गई हज़ारों तस्वीरों के औसतीकरण से निर्मित यह तस्वीर 2022 में प्रकाशित की गई थी। ध्रुवीकृत प्रकाश में यह कृष्ण विवर कुछ इस तरह नज़र आता है। हालाँकि, कृष्ण विवर अपने-आप में तो देखा नहीं जा सकता, मगर उसके गुरुत्वाकर्षण बल के कारण उसके इर्द-गिर्द प्रकाश एक डिस्क के रूप में मुड़ जाता है, जिससे उसकी स्थिति साधी जा सकती है। इस रहस्यमय कृष्ण विवर पर पेश है पाँच दशक पहले, जयंत विष्णु नारलीकर द्वारा लिखी गई विज्ञान कथा, पृष्ठ 73 पर।

पिछला आवरण: अमेरिकन म्यूज़ियम ऑफ नेचुरल हिस्ट्री में संरक्षित *टायरेनोसॉरस रेक्स (टी-रेक्स)* का कंकाल। चित्र देखकर ही इन विलुप्त जीवों की ज़बरदस्त शक्ति का अन्दाज़ा लगाया जा सकता है। पर क्या आप जानते हैं कि कुछ समय पहले टायरेनोसॉर परिवार के एक सदस्य – *गॉर्गोसॉरस लिब्रेटस* – का जीवाश्म खोजा गया जिसके पेट में दो अन्य डाइनोसॉर के अवशेष पाए गए? रोमांचक है न? इसके पीछे क्या राज़ है, यह जानने के लिए पढ़िए पारुल सोनी का लेख, पृष्ठ 07 पर।

यह अंक त्रिवेणी एजुकेशनल ट्रस्ट के वित्तीय सहयोग से प्रकाशित किया जा रहा है।

LINK : कवर 1 - https://en.wikipedia.org/wiki/Sagittarius_A*#/media/File:A_view_of_the_Milky_Way_supermassive_black_hole_Sagittarius_A*_in_polarised_light_(eso2406a).jpg
कवर 3 - https://averyreview.com/issues/57/empire-salt-tax
कवर 4 - https://www.amnh.org/exhibitions/permanent/saurischian-dinosaurs/tyrannosaurus-rex

एक समयहीन माहौल में समय

बंकर में जीवन

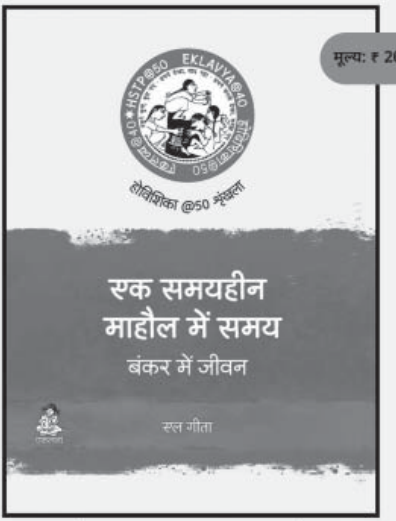

लेखक: एल गीता

एक बंकर, जहाँ क्या दिन, क्या रात, कुछ खबर नहीं। समय बताती कोई घड़ी नहीं। ऐसे में, एक प्रयोगकर्ता का समय कैसे बीतता होगा भला? कलाई या दीवार वाली न सही, उसकी जैविक-घड़ी तो कुछ इशारा करती होगी? क्या ऐसे समयहीन माहौल में रहने पर, उसके सोने-जागने के चक्र और माहवारी-चक्र के बीच के सम्बन्ध पर कोई असर पड़ेगा? क्या लक्ष्य और निहितार्थ होंगे ऐसे विचित्र प्रयोग के? यह सब साझा करती हैं एल गीता, ऐसे ही एक बंकर में रहने के अपने अनुभवों पर आधारित लेख में।

यह किताब होविशिका के 50 साल और एकलव्य के 40 साल पूरे होने के मौके पर ज्ञान-विज्ञान के अलग-अलग क्षेत्रों से जुड़ी किताबों की सीरीज़ में एक कड़ी के रूप में प्रकाशित की जा रही है।

ऑर्डर करने के लिए सम्पर्क करें-

फोन: +91 755 297 7770-71-72

वेबसाइट: www.eklavya.in; ईमेल: pitara@eklavya.in

eklavya

समय के गहरे अँधेरे से निकली एक चिड़िया

14

ज़रा सोचिए, एक विलुप्त हो चुका पक्षी, कई दशकों बाद आपको अचानक किसी बरसात की रात जंगल में दिख जाए! आप दौड़े-दौड़े जाते हैं और वन विभाग को फोन लगाते हैं। खबर आग की तरह फैल जाती है, और तुरन्त उस जंगल का करीब 500 वर्ग किलोमीटर का इलाका संरक्षित घोषित कर दिया जाता है। क्या आप ठीक तो हैं? कहानी अविश्वसनीय और हैरत-अंगेज़ है, मगर सच है। जंगल में मोर (यहाँ, जेरडॉन कोर्सर) नाचा, किसने देखा? जानिए इसी कहानी के सच्चे किरदार, भारत भूषण, द्वारा लिखित इस लेख में।

नमक और महात्मा गांधी

57

भारत में नमक उत्पादन का इतिहास बेहद पेचीदा और उतार-चढ़ाव से भरा रहा है। जहाँ एक ज़माने में उड़ीसा का नमक पूरी दुनिया में निर्यात किया जाता था, वहीं ऐसा आखिर क्या हुआ जो स्वतंत्रता के बाद भारत नमक का आयातक बन गया? इसमें गांधी के नेतृत्व में किए गए नमक सत्याग्रह की क्या भूमिका है? और इन सब राजनैतिक-औपनिवेशिक झमेलों के बीच, नमक का उत्पादन करने वाले मज़दूरों का क्या हाल रहा? ऐसे ही कई रोचक व ज़रूरी सवालों के जवाबों की तलाश के लिए पढ़िए मार्क कुरलान्स्की की किताब *सॉल्ट: अ वर्ल्ड हिस्ट्री* से लिए गए इस सम्पादित अध्याय को।

शैक्षणिक संदर्भ

अंक-98 (मूल अंक-155), नवम्बर-दिसम्बर 2024

इस अंक में

05 | मधुमक्खी के छत्ते के षट्कोणीय प्रकोष्ठ - अन्य अवलोकन...
माधव केलकर द्वारा संकलित

07 | जीवाश्म के अन्दर संरक्षित जीवाश्म
पारुल सोनी

14 | समय के गहरे अँधेरे से निकली एक चिड़िया
भारत भूषण

22 | गणित में सन्दर्भगत समस्याएँ
हृदय कान्त दीवान

30 | कॉपी संस्कृति
मीनू पालीवाल

38 | सामाजिक अध्ययन की पुस्तकें एवं नक्शे
प्रकाश कान्त

51 | जामलो चलती गई
रुबीना खान

57 | नमक और महात्मा गांधी

73 | कृष्ण विवर (विज्ञान कथा)
जयंत विष्णु नारलीकर

84 | बाल सफेद क्यों होते हैं?
सवालीराम

कुदरत के सच और समाज

कुछ बिखरे हुए सवाल

मूल्य: ₹ 25

लेखक: लाल्टू

विज्ञान के क्या मायने हैं? क्या मायने हैं वैज्ञानिक प्रवृत्ति के? कुदरत, कुदरती हम, हम से समाज, मूल्य, मान्यता, प्रेम – विज्ञान इनसे अछूता तो नहीं? लाल्टू के सवाल बिखरे हैं, कुदरत के सच की ही तरह, मगर इस बिखराव में चिन्ताएँ हैं, हकीकत और विज्ञान के सामाजिक भविष्य की। 2022 के 'होविशिका व्याख्यान माला' में दिया गया यह व्याख्यान, देखें किस मीमांसा तक ले जाता है...

यह किताब होविशिका के 50 साल और एकलव्य के 40 साल पूरे होने के मौके पर ज्ञान-विज्ञान के अलग-अलग क्षेत्रों से जुड़ी किताबों की सीरीज़ में एक कड़ी के रूप में प्रकाशित की जा रही है।

ऑर्डर के लिए सम्पर्क करें-
फोन: +91 755 297 7770-71-72
वेबसाइट: www.eklavya.in; ईमेल: pitara@eklavya.in

eklavya

संदर्भ अंक-154, सितम्बर-अक्टूबर में प्रकाशित लेख 'मधुमक्खी के छत्ते के प्रकोष्ठों का आकार षट्कोणीय क्यों होता है?' के सन्दर्भ में

कुछ अन्य अवलोकन एवं विचार

मधुमक्खी द्वारा बनाए षट्कोणीय छत्तों को काफी समय तक अचरज और मधुमक्खी के दैवीय ज्यामिति के ज्ञान के रूप में देखा जाता रहा है। हालाँकि, उस दौर में भी इन ढाँचों को उसे बनाने में लगने वाली ऊर्जा और शहद के अधिकतम भण्डारण के साथ जोड़कर देखा जाता रहा है।

शायद एक-जैसे दिखने वाले षट्कोणीय आकार आश्चर्यचकित करते रहे हैं। मोम की महीन दीवारों से घिरे षट्कोणीय आकार औसतन 5.5 मिलीमीटर चौड़े और 11 मिलीमीटर गहरे होते हैं। कुछ विचारकों का खयाल था कि हो सकता है, मधुमक्खी अपनी टाँगों या एंटीना वगैरह की मदद से नापजोख करती हो जिससे इतने परफेक्ट षट्कोणीय आकार बनते हैं। इसे लेकर कुछ अध्ययन भी किए गए हैं। इनसे अभी भी इस बात की कोई स्पष्टता या पुष्टि नहीं मिली कि अंगों की लम्बाई और षट्कोणीय आकार के बीच कोई निश्चित सहसम्बन्ध है या नहीं। हमारी मौजूदा समझ के मुताबिक यह माना जाता है कि मधुमक्खियाँ बेलनाकार कोषों को षट्कोणीय आकार देती हैं। बेलनाकार कोषों से षट्भुज के निर्माण की प्रक्रिया पर अभी बहस जारी है। आजकल मधुमक्खी के छत्ते के निर्माण और विस्तार को समझने के लिए कम्प्यूटर सिमुलेशन का इस्तेमाल भी किया जा रहा है।

डार्विन और कुछ अन्य जीव-वैज्ञानिकों का यह अवलोकन था कि छत्ते में षट्कोणीय के अलावा कुछ गोलाकार एवं चतुर्भुजाकर कोष भी दिखाई देते हैं। कुछ आधुनिक अवलोकनों में भी लार्वा रखने के षट्कोणीय कोष के मुकाबले शहद रखने वाले षट्कोणीय कोष थोड़े बड़े दिखाई देते हैं। इसी तरह ड्रोन यानी नर मधुमक्खियों के कोष भी अपेक्षाकृत बड़े होते हैं (देखें चित्र-1 व 2)।

मैक्सिकन मेलिपोना मधुमक्खी गोलाकार ट्यूबनुमा संरचनाओं वाला

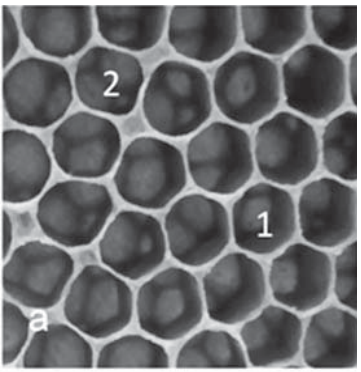

चित्र-1: *मधुमक्खी के छत्ते में विविध तरह के कोष- **1.** कोष जो चारों ओर से षट्कोणीय आकार से घिरा हुआ है।*

2. *कोष जो चतुर्भुजाकार है। इसमें लगभग 90 अंश का कोण बनाती भुजाएँ देखी जा सकती हैं।*

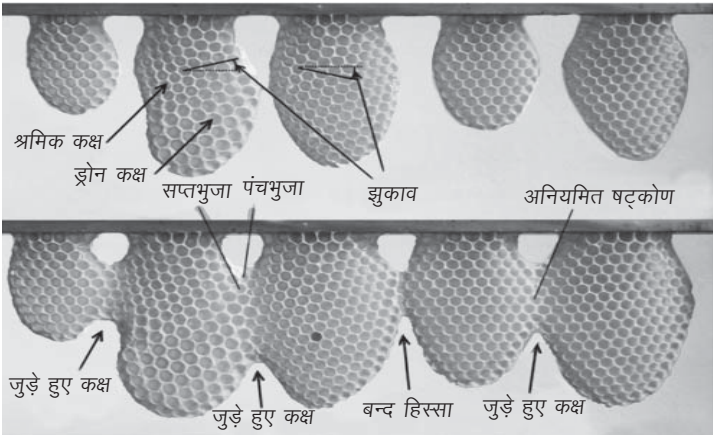

चित्र-2: *छत्ते का बारीक अवलोकन - नियमित ज्यामितीय आकारों के बीच कुछ अनियमितताएँ भी दिखाई देती हैं। जैसे पंचभुज, सप्तभुज का पाया जाना या सटे हुए कोषों की बेसलाइन में झुकाव आदि। इसके अलावा चित्र में श्रमिक मधुमक्खी एवं नर मधुमक्खी (ड्रोन) के कोषों को भी दिखाने की कोशिश की गई है।*

छत्ता बनाती है। इसे देखकर यह विचार भी पनपा कि शायद समस्त मधुमक्खियाँ गोलाकार ट्यूबनुमा रचनाओं को षट्भुज के रूप में आकार देती होंगी। मेलिपोना छत्ता यह दिखाता है कि प्रकृति में गोलाकार रचनाएँ काफी आम हैं। जैसे कई कीट लकड़ी में गोलाकार सुरंगनुमा बिल बनाते हैं, कई पक्षी गोलाकर घोंसले बनाते हैं।

यदि मधुमक्खी के छत्ते को जैव-विकास के नज़रिए से देखें तो समझ आएगा कि छत्ते के निर्माण के लिए लगातार मोम की ज़रूरत होती है। लगभग 400 ग्राम मोम के स्रावन के लिए मधुमक्खी को तकरीबन 5 किलो चीनी, पानी और शहद की ज़रूरत होती है। इसलिए मधुमक्खियों का जो झुण्ड मोम की कम-से-कम बरबादी करे और समूह की भोजन सम्बन्धी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए पर्याप्त शहद जुटा पाए, वही अपना अस्तित्व आगे ज़्यादा फैला पाएगा। भोजन भण्डारण और शिशुओं की परवरिश के लिए मधुमक्खियों के समूहों ने एकल कोष से लेकर पास-पास सटे हुए गोलाकार कोषों तक के छत्तों को बनाया होगा। शायद पास-पास सटे गोलाकर कोषों में गोलाई गायब होकर समतल सतहें आ गईं और मेलिपोना के छत्ते की तरह एक परफेक्ट छत्ता बन सका। मधुमक्खियों के वे झुण्ड जिन्होंने इस तरह कम-से-कम श्रम में बेहतर कोषों की संरचना बनाई, मोम के स्राव में कम-से-कम शहद व्यय किया, सम्भव है, सबसे अच्छी तरह से सफल हुए और अपनी नव-अर्जित मितव्ययी प्रवृत्तियों को अपने वारिसों में स्थानान्तरित कर पाए जिसकी वजह से प्राकृतिक चयन में सफल होने का शायद उन्हें बेहतर मौका भी मिला।

- माधव केलकर द्वारा विविध स्रोतों से संकलित

जीवाश्म के अन्दर संरक्षित जीवाश्म

पारुल सोनी

जीवाश्म विज्ञान जीवाश्मों की मदद से पृथ्वी पर जीवन के इतिहास का अध्ययन है। जीवाश्म का मतलब है पौधों, जानवरों, कवक, बैक्टीरिया और एकल-कोशिका वाले जीवों के अवशेष। और जन्तुओं के मल वगैरह के अश्मीभूत रूप भी इनमें शामिल होते हैं। ये अवशेष चट्टानों या पत्थरों का रूप ले लेते हैं या उनमें अपनी छाप छोड़ जाते हैं। जीवाश्म विज्ञानी इनका अध्ययन करके विलुप्त और जीवित जीवों के विभिन्न पहलुओं को समझने का प्रयास करते हैं। ज़ाहिर है, हम पृथ्वी के अतीत में जाकर तो देख नहीं सकते कि कब कैसे जीव-जन्तु रहे होंगे, वे क्या करते रहे होंगे और उनके आपसी सम्बन्ध कैसे रहे होंगे। लेकिन बारीकी-से अध्ययन किया जाए तो जीवाश्मों से अतीत के जीवों के जीवन और पर्यावरण के बारे में कई महत्वपूर्ण जानकारियाँ मिल सकती हैं। और तो और, जीवाश्म विज्ञानी इन जीवाश्मों की छानबीन करके यह भी पता लगा लेते हैं कि वह जीव क्या खाता होगा। बस, थोड़ी जासूसी नज़र की ज़रूरत होती है। इसी तरह की खोज में एक दिलचस्प जीवाश्म मिला है जिससे कई सालों पहले इस धरती पर अस्तित्व में रहे एक विशालकाय जीव – डाइनोसॉर - के बारे में महत्वपूर्ण और दिलचस्प जानकारी मिली है।

क्रेटेशियस काल के शिकारी

गॉर्गोसॉरस लिब्रेटस मांसाहारी डाइनोसॉर (टायरेनोसॉर) समूह का सदस्य था जो क्रेटेशियस काल के अन्त के आसपास एशिया और उत्तरी अमेरिका में पाए जाने वाले सबसे बड़े थलचर शिकारियों में से थे। (क्रेटेशियस काल पृथ्वी के भूगर्भीय इतिहास की एक अवधि थी जो लगभग 14.5 करोड़ साल पहले शुरू होकर 6.6 करोड़ साल पहले तक चली थी।) गॉर्गोसॉरस लिब्रेटस दाँत से पूँछ की नोक तक 9 मीटर लम्बा था और 7.5 करोड़ साल पहले अस्तित्व में था यानी जुरासिक पार्क फिल्म के मशहूर टायरेनोसॉरस रेक्स (टी.रेक्स) से भी कई करोड़ साल पहले। यह जीव जिस इलाके में रहता था, वह आजकल के अल्बर्टा, कनाडा के डाइनोसॉर प्रान्तीय पार्क का हिस्सा है (यह पार्क रेड डियर नदी घाटी में स्थित है, और यहाँ डाइनोसॉर के जीवाश्म बहुतायत में पाए जाते हैं)।

कमसिन टायरेनोसॉर संकरी खोपड़ी, ब्लेड जैसे दाँत और लम्बी पतली पिछली टांगों से सुसज्जित थे। उनका वज़न लगभग 350 किलोग्राम होता था। उनके वयस्क माता-पिता का वज़न इसका लगभग 10 गुना होता था और वे काफी शक्तिशाली हुआ करते थे। विशाल खोपड़ी और

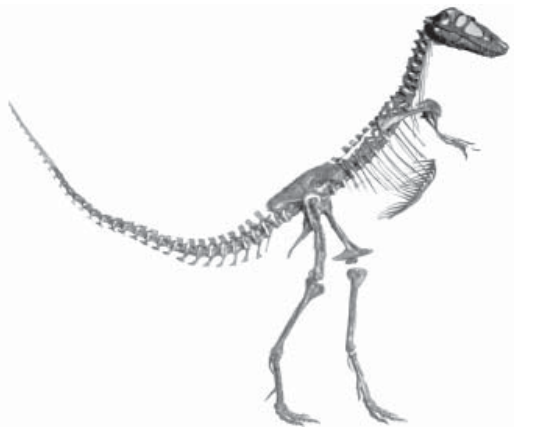

चित्र-1: *युवा गॉर्गोसॉरस लिब्रेटस का कंकाल। 1917 में चार्ल्स एच. स्टर्नबर्ग ने इसकी खोज की थी। यह गॉर्गोसॉरस के अन्य नमूनों से छोटा था – इसकी खोपड़ी अन्य नमूनों के बरक्स नीचे थी तथा हल्की थी, और इसके हाथ-पैरों की लम्बाई का अनुपात भी अधिक था। इसके चलते इसे गॉर्गोसॉरस की एक नई खोजी गई प्रजाति का मुख्य नमूना माना गया, जिसका नाम जी. स्टर्नबर्गी रखा गया। मगर आज के जीवाश्म विज्ञानियों के अनुसार यह नमूना दरअसल गॉर्गोसॉरस लिब्रेटस प्रजाति का ही युवा रूप है।*

बड़े नुकीले दाँतों के साथ वे हड्डियों को चबाने में सक्षम थे।

कुछ वक्त पहले गॉर्गोसॉरस लिब्रेटस के रोमांचक जीवाश्म मिले हैं। खास बात यह है कि इस गॉर्गोसॉरस के जीवाश्म में पेट की गुहा के अन्दर दो छोटे डाइनोसॉर के अवशेष पाए गए हैं। वैसे तो जीवाश्म विज्ञानियों का मानना है कि इस क्षेत्र में कमसिन टायरेनोसॉर/डाइनोसॉर के जीवाश्म दुर्लभ हैं, क्योंकि उनकी हड्डियाँ इतनी कमज़ोर होती हैं कि वे या तो जीवाश्म नहीं बन पाती हैं या खोजे जाने से पहले ही यहाँ से गुज़रने वाली नदियों द्वारा नष्ट हो जाती हैं। लेकिन यहाँ हाल ही में मिले अच्छे से संरक्षित युवा गॉर्गोसॉरस के जीवाश्म के अध्ययन में कुछ महत्वपूर्ण और रोचक जानकारियाँ मिली हैं जिनका वर्णन आगे किया गया है। यह जानकारी न सिर्फ उनकी शरीर रचना को लेकर है बल्कि उनके भोजन और भोजन की बदलती आदतों को लेकर भी है।

युवा और वयस्क के भिन्न आहार

पूर्व में मिले जीवाश्मों से पता चला था कि ये विशाल शाकाहारी जीवों का शिकार करते थे। मल जीवाश्म और हड्डियों के घिसने के आधार पर शोधकर्ताओं का मत था कि वयस्क गॉर्गोसॉरस हड्डी कुचल देने वाले अपने पैने दाँतों का इस्तेमाल ट्राइसेराटॉप्स और बत्तखनुमा चोंच वाले बड़े-बड़े शाकाहारी डाइनोसॉर को खाने के लिए करते थे। ये जीव अफ्रीकी हाथियों की साइज़ और वज़न के होते थे जिन्हें कोई अन्य शिकारी नहीं खा सकते थे। वैसे टी-रेक्स द्वारा किसी ट्राइसेराटॉप्स पर हमला करना एक बड़ा जोखिम होता था क्योंकि लड़ाई किसी भी तरफ जा सकती थी। अगर टी-रेक्स जीत जाता तो वो दावत का आनन्द ले सकता था, लेकिन उतनी ही सम्भावना इस बात की भी होती थी कि शिकार करने वाला खुद ही शिकार बन जाए। कठोर और घातक सींगों वाले ट्राइसेराटॉप्स अपने शक्तिशाली सींगों से टी-रेक्स को मार भी तो सकते थे।

हालाँकि, युवा टायरेनोसॉर क्या खाते थे, यह बहस का विषय रहा है क्योंकि उनकी खोपड़ी और दाँत वयस्कों की तुलना में कम मज़बूत दिखते हैं। शोधकर्ताओं का मानना है कि यह अलग तरह की शारीरिक रचना इस बात का संकेत देती है कि बड़े होने के साथ-साथ टायरेनोसॉर का आहार सम्भवतः बदलता गया होगा। इन परिवर्तनों से लगता है कि टायरेनोसॉरिड्स ने एक बड़ा आहार परिवर्तन किया होगा।

युवा गॉर्गोसॉरस के दाँतों के जीवाश्म अपेक्षाकृत दुर्लभ हैं, साथ ही संरक्षित आँत और मल भी, जिससे यह पता लगाना मुश्किल हो जाता है कि वे क्या खाते थे। लेकिन सन्

2009 में शोधकर्ताओं द्वारा जीवाश्म की एक महत्वपूर्ण खोज में देखा गया कि उनकी पसलियों के बीच से किसी जन्तु के पैर की हड्डियाँ बाहर झाँक रही थीं, जिन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि इसके अन्तिम भोजन के अवशेष अभी भी अन्दर थे। दरअसल, यह नमूना गॉर्गोसॉरस में पेट की सामग्री को संरक्षित करने की पहली घटना का प्रतिनिधित्व करता है।

जीवाश्म का अध्ययन

जीवाश्म विज्ञानियों ने इस नमूने का गहराई से अध्ययन किया। गॉर्गोसॉरस जिसकी मरते वक्त उम्र पाँच से सात साल के बीच रही होगी, के चारों ओर बनी चट्टान को धीरे-धीरे खोला गया ताकि यह देखा जा सके कि अन्दर क्या था। शोधकर्ताओं ने पाया कि पैर की हड्डियाँ अभी भी उन पैरों से जुड़ी हुई थीं जो दो छोटे पक्षी जैसे डाइनोसॉर के थे। ये पैर *सिटीप्स एलिगेंस* के थे। सिटीप्स शिकार होते वक्त अपने जीवन के पहले वर्ष में थे और उनका वज़न लगभग एक टर्की पक्षी के बराबर था। इन पैरों में पाचन के लक्षण दिखाई दिए जो गॉर्गोसॉरस के पेट के एसिड द्वारा घिस गए लगते थे। हड्डियों का एक सेट दूसरे की तुलना में अधिक घिसा हुआ था, जिससे पता चलता है कि उन्हें शायद घण्टों या दिनों के अन्तराल पर खाया गया होगा।

वयस्क गॉर्गोसॉर अपने शिकार के सभी हिस्सों को खाते थे। अक्सर इस प्रक्रिया में वे हड्डियों को भी तोड़कर

चित्र-2: *वह जीवाश्म जिसमें सिटीप्स एलिगेंस (जीवाश्म के निचले भाग में) के पैर वहाँ पाए गए जहाँ गॉर्गोसॉर का पेट होने की सम्भावना थी और उनमें पाचन के लक्षण भी दिखाई दिए।*

निगल लेते थे। लेकिन युवा गॉर्गोसॉर का व्यवहार थोड़ा भिन्न था, जो बहुत चुनिन्दा प्रतीत होता है। ऐसा अनुमान है कि मरने से पहले, युवा गॉर्गोसॉरस ने *सिटीप्स एलिगेंस* प्रजाति के दो युवा डाइनोसॉर को टुकड़े-टुकड़े करके खाया होगा। उनकी हड्डियों से पता चलता है कि वे अपने माता-पिता की तुलना में बहुत ज़्यादा खाते थे और अपने शिकार को पूरा निगलने की बजाय शरीर के सबसे मांसल हिस्से यानी उनके पैरों को खाते थे और बाकी हिस्से को छोड़ देते थे। वैसे केवल पैर खाना संयोग हो सकता है, लेकिन एक के बाद एक दोनों युवा डाइनोसॉर को एक ही तरह से खाना, यह सुझाव देता है कि यह युवा गॉर्गोसॉर का एक विशिष्ट व्यवहार हो सकता है। साथ ही, एक ही प्रजाति और उम्र के दो डाइनोसॉर की उपस्थिति, जो अलग-अलग समय पर खाए गए, यह इंगित करता है कि ये शायद युवा गॉर्गोसॉर के पसन्दीदा शिकार में से एक रहे होंगे।

युवा बनाम वयस्क टायरेनोसॉर

एक निष्कर्ष यह है कि युवा और वयस्क टायरेनोसॉर ने अपने जीवनकाल में अलग-अलग पारिस्थितिक स्थानों (niche) पर कब्ज़ा किया होगा। जैसे-जैसे युवा टायरेनोसॉर बड़े और परिपक्व होते गए, वे छोटे और युवा डाइनोसॉर का शिकार करने की बजाय बड़े शाकाहारी डाइनोसॉर का शिकार करने लगे। अनुमान यह है कि गॉर्गोसॉर में लगभग 11 वर्ष की आयु में बड़े पैमाने पर विकास शुरू होता होगा। जैसे-जैसे वे बड़े होते जाते, उनके दाँत और खोपड़ी अधिक मज़बूत होती होंगी। अपने बढ़ते शरीर की पूर्ति के लिए उन्होंने बड़े शिकार से निपटना प्रारम्भ किया होगा। यह परिवर्तन भोजन व्यवहार से सम्बन्धित था।

वयस्क गॉर्गोसॉर बहुत भारी-भरकम शरीर वाले जानवर थे जो बड़े शिकार को पकड़ने, हड्डियों को काटने और मांस को खुरचने और फाड़ने के लिए अपनी विशाल खोपड़ी और बड़े पैने दाँतों का इस्तेमाल करते होंगे। इनकी तुलना में, युवा गॉर्गोसॉर इतने बड़े जीव का शिकार नहीं कर पाते होंगे। उनकी हड्डियों को काटने की क्षमता तुलनात्मक रूप से कमज़ोर थी। वे अपनी पतली खोपड़ी और ब्लेड जैसे दाँत की वजह से छोटे और युवा जीवों को अपना शिकार बनाने के लिए उपयुक्त थे।

ऑन्टोजेनेटिक आहार परिवर्तन

आहार परिवर्तन का यह व्यवहार कई जन्तुओं में दिखाई देता है। जैसे मेंढक के टैडपोल कायान्तरण से पहले तो प्रायः शाकाहारी या मृतोपजीवी होते हैं लेकिन कायान्तरण के बाद वे कीटभक्षी हो जाते हैं।

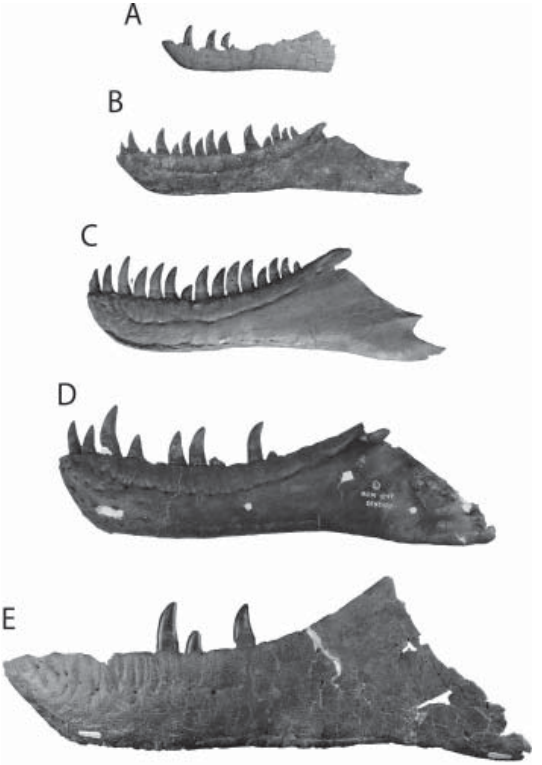

चित्र-3: *पाँच अलग-अलग उम्र के गॉर्गोसॉरस लिब्रेटस के निचले जबड़े। A से E तक – छोटे किशोर, किशोर, नवयुवा, युवा व वयस्क। गौरतलब है कि जैसे-जैसे ये जीव बड़े होते जाते थे, उनके शरीर, खास तौर पर उनकी खोपड़ी, की बनावट नाटकीय ढंग से बदलती थी। इन चित्रों में भी, उनके निचले जबड़ों के पिछले भाग के विकास में ज़बरदस्त बदलाव साफ-साफ देखा जा सकता है।*

मेंढक अपने जीवन-चक्र के अलग-अलग चरणों में अलग-अलग चीज़ें खाना पसन्द करते हैं।

मगरमच्छ भी बड़े होने के साथ-साथ अपना आहार बदलते हैं। छोटे मगरमच्छ मुख्य रूप से कीड़े-मकोड़े खाते हैं। जैसे-जैसे वे बड़े होते हैं, कीड़ों की बजाय मछली, पक्षी और स्तनधारी जीवों को खाने लगते हैं।

उम्र-आधारित आहार परिवर्तन यानी ऑन्टोजेनेटिक डाएटेरी शिफ्ट (ODS) के खाद्य संजाल पर भी असर होते हैं और जन्तुओं तथा जन्तु आबादियों पर भी। एक तो इसके चलते जन्तु का भोजन उम्र के साथ बदलता है जिसकी वजह से वह अपने परिवेश में अलग-अलग संसाधनों का उपभोग कर पाता है। इसका असर उसकी वृद्धि पर भी होता है और प्रजनन दर पर भी। इसके अलावा वह जीवन के अलग-अलग पड़ावों पर भिन्न-भिन्न प्रजातियों को प्रभावित करता है। इसके चलते पारिस्थितिकी तंत्र के प्रजातीय संगठन का भी नियमन होता है। और कई मामलों में आहार परिवर्तन का मतलब यह भी होता है कि एक ही जन्तु अलग-अलग उम्र में अलग-अलग तरह के भोजन को पचाने में सक्षम होता है।

आम तौर पर किसी भी पारिस्थितिक

तंत्र में विभिन्न पोषण स्तर होते हैं। सबसे पहले तो प्राथमिक उत्पादक यानी वनस्पतियाँ हैं। इसके बाद वनस्पतियों पर निर्भर शाकाहारी हैं। उसके ऊपर शाकाहारी जन्तुओं को खाने वाले मांसाहारी जन्तु हैं। फिर इन मांसाहारी जन्तुओं को खाने वाले मांसाहारी जन्तु हैं। इन्हें पोषी स्तर (trophic level) कहते हैं। सामान्यत: माना जाता है कि कोई भी प्रजाति किसी एक स्तर पर स्थित होगी। लेकिन ODS के परिणामस्वरूप एक ही प्रजाति अलग-अलग उम्र में दो अलग-अलग पोषी स्तर पर पाई जा सकती है।

खैर, जिस प्रजाति का कोई अन्य जन्तु प्रजाति शिकार नहीं करती, उसे शीर्ष शिकारी (top predator) कहते हैं। इसके निचले स्तर के शिकारी मध्य शिकारी हैं। किसी पर्यावरण में अमूमन ये भूमिकाएँ अलग-अलग प्रजातियों द्वारा निभाई जाती हैं। इन भूमिकाओं को पारिस्थितिक निश कहते हैं। इनमें उसका भोजन, अन्य प्रजातियों से सम्बन्ध, उसके द्वारा उत्सर्जित पदार्थ वगैरह सब आते हैं। कहते हैं कि प्रत्येक प्रजाति एक निश में जीती है।

लेकिन ऐसा लगता है कि टायरेनोसॉर ने तो अलग-अलग उम्र में अलग-अलग निश पर कब्ज़ा कर लिया था। इसका एक फायदा तो यह हुआ होगा कि अलग-अलग उम्र के टायरेनोसॉर अलग-अलग खाद्य संसाधनों का उपयोग करते रहे होंगे जिसके चलते उनके बीच संसाधनों के लिए प्रतिस्पर्धा नहीं या कम होती होगी। यह शायद क्रेटेशियस के अन्तिम कुछ करोड़ वर्षों में टायरेनोसॉर की सफलता का एक कारण रहा होगा।

लेकिन इसका एक नकारात्मक पक्ष भी है। जो भूमिकाएँ दो अलग-अलग प्रजातियाँ निभा सकती थीं, उन्हें एक ही प्रजाति निभाए, तो अन्य प्रजातियों के विकास की गुंजाइश कम तो हो ही जाएगी।

कुछ और प्रमाणों की ज़रूरत

युवा और वयस्क टायरेनोसॉर के बीच व्यापक आहार अन्तर था। शोधकर्ताओं का मानना है कि इस जीवाश्म का अध्ययन एक अनुमान नहीं बल्कि इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि टायरेनोसॉर अपने जीवनकाल की अलग-अलग अवस्थाओं में क्या खाते थे। हालाँकि, परिणाम केवल एक ही जीव के जीवाश्म पर आधारित हैं, जो पारिस्थितिक निष्कर्ष निकालने के लिए पर्याप्त नहीं हैं, लेकिन व्याख्या काफी उचित लगती है। इसकी पुष्टि करने के लिए और अधिक जीवाश्मों की आवश्यकता होगी।

पारुल सोनी: *संदर्भ* पत्रिका से सम्बद्ध हैं।

समय के गहरे अँधेरे से निकली एक चिड़िया

भारत भूषण

यह लेख जेरडॉन कोर्सर नाम की एक दुर्लभ चिड़िया के बारे में है। एक ऐसी चिड़िया जो गुमनामी के अँधेरे में कई दशक तक खोई रही थी। सन् 1986 में पक्षी निरीक्षक भारत भूषण ने जेरडॉन कोर्सर की मौजूदगी के सबूत फिर एक बार दुनिया के सामने पेश किए। यह पल प्राकृतिक इतिहास के लिए बेहद महत्वपूर्ण रहा होगा और भारत भूषणजी ने काफी रोचकता के साथ इस वाकये को इस लेख के ज़रिए प्रस्तुत किया है।

विलुप्त माने गए जीवों की खोज एक चुनौती होती है। 2011 में चर्चित एक रिपोर्ट के अनुसार पिछले 135 सालो में कुछ 144 ऐसी प्रजातियों की खोज पुनः की गई है। इनमें से ज़्यादातर खोज सन् 1980 के बाद हुई है। ज़ाहिर है कि बेहतर उपकरण और जानकारी के कारण शिनाख्त करना आसान हो रहा है। तो जेरडॉन कोर्सर पुनःखोज का आखिरी उदाहरण न था और न होगा।

लेकिन दुर्भाग्यवश कई सारी प्रजातियाँ तेज़ी-से घट रही हैं। पर्यावरण के नुकसान के कारण बहुत सारे पर्यावास तेज़ी-से नष्ट हो रहे हैं। जेरडॉन कोर्सर जैसी स्थानिक प्रजातियाँ इससे सर्वाधिक प्रभावित होती हैं। पिछले कुछ 15 सालों में जेरडॉन कोर्सर भी फिर से खो गई है। हिमालयन बटेर, गुलाबी सर वाली बत्तख जैसी कई प्रजातियों को भी आखिरी बार देखे हुए लगभग कुछ दशक बीत चुके हैं।

ऐसी परिस्थिति में भारत भूषण जैसे व्यक्ति और जेरडॉन कोर्सर जैसे उदाहरण एक आशा निर्माण करते हैं कि ऐसी प्रजातियाँ अभी भी दूर किसी जंगल के कोने में अपनी मौजूदगी छुपाकर जी रही हैं। यह लेख उन तमाम लोगों की हौंसला अफज़ाई करता है जो एक आशा के साथ इन दुर्लभ प्रजातियों की खोज में लगे रहे हैं।

- संकेत राउत

दक्षिणी आन्ध्र प्रदेश में सिद्दवट्टम नाम का एक गाँव है। यह कडप्पा ज़िले (अब नया नाम वाय.एस.आर. ज़िला) में पेन्नार नदी के किनारे बसा हुआ है। चौड़ी रेतीली नदी की तलहटी पर एक खराब रखरखाव वाली, नीची सड़क आपको नदी के उस पार ले जाती है। नदी पार करते हुए, इससे पहले कि आप कुछ समझ पाएँ, आप सिद्दवट्टम से आगे निकल जाते हैं! इस इलाके में पूर्वी घाट के जंगल और पहाड़ियाँ हैं, जो भारत के प्राकृतिक इतिहास से जुड़े कई रहस्यों को अपने में समेटे हुए हैं।

चित्र-1: कोदंडरामास्वामी मन्दिर

सिद्दवट्टम के पास एक और ऐसा ही गाँव है जिसका नाम है वोंटिमिट्टा। यह जगह प्रसिद्ध कोदंडारामास्वामी मन्दिर के लिए जानी जाती है। मुम्बई से चेन्नई जाने वाली ट्रेन में बैठे यात्रियों को कडप्पा शहर पार करने के बाद इस प्रसिद्ध मन्दिर के गोपुरम दिखाई देने लगते हैं।

जेरडॉन कोर्सर - एक दुर्लभ पक्षी

यह बात जनवरी 1986 की है जब मैं वोंटिमिट्टा के वन विश्राम गृह में रुका था। मैं उस सर्वेक्षण दल का सदस्य था जो 'जेरडॉन कोर्सर या डबल बैंडेड कोर्सर' नामक पक्षी की तलाश में था। यह एक दुर्लभ और स्थानिक पक्षी है (स्थानिक का अर्थ है, वह प्राणी सिर्फ एक निश्चित जगह पर ही पाया जाता है। इस जगह के अलावा और कहीं नहीं)। यद्यपि मैं इस खोज में जून 1985 से जुड़ा था, वैसे इस पक्षी को ढूँढने के प्रयास सन् 1848 से ही शुरू हो गए थे जब इसे पहली बार देखा गया था।

थॉमस क्लेवरहिल जेरडॉन (जो पेशे से डॉक्टर थे) सर्जन मेजर के रूप में मद्रास (अब चेन्नई) स्थित ब्रिटिश भारत के मेडिकल दल में तैनात थे। जेरडॉन ने सन् 1848 में

पहली बार इस पक्षी की खोज की थी। उन्होंने इस पक्षी को अपने प्राकृतिक इतिहास संग्रह में शामिल किया था। और इस अजीब एवं नए पक्षी की खाल को एक पक्षी वैज्ञानिक, डब्ल्यू. ब्लिथ के पास भेजा। डब्ल्यू. ब्लिथ ने इसे एक नई प्रजाति के रूप में पहचाना और इसे डबल-बैंडेड कोर्सर (double-banded courser) नाम दिया। सर्जन मेजर की वजह से इसे Jerdon's courser के नाम से भी जाना जाता है।

बहरहाल, अब मैं अपनी कहानी पर वापस लौटता हूँ। उस रात, वोंटिमिट्टा के वन अधिकारी ने मुझे बताया कि मेरे बर्ड ट्रैकर, ऐतन्ना ने उसके गाँव रेड्डीपल्ली में 'कालिवि कोडी' नाम के एक पक्षी को पकड़ा है। रेड्डीपल्ली सिद्दवट्टम के उत्तर में स्थित है। मैं यह जानता था कि स्थानीय गाँव वाले एवं पक्षी पकड़ने वाले, कई प्रकार के पक्षियों को 'कालिवि कोडी' के नाम से जानते हैं। 'कालिवि' स्थानीय भाषा में कैरिसा

कुछ खोजबीन अभी भी बाकी है

डबल-बैंडेड कोर्सर के रहस्यमय तरीके से गायब होने और फिर से प्रकट होने की तरह ही, भारतीय जंगलों में कई अन्य रहस्य शायद अभी भी मौजूद हैं। इनमें से एक है, गुलाबी सिर वाली बत्तख। किसी समय ये पक्षी पूर्वोत्तर के ऊँचे पहाड़ों के दूर-दराज़ के तालाबों में घोंसले बनाने के लिए जाने जाते थे। और कभी-कभी आन्ध्र प्रदेश के पूर्वी तट तक प्रवास कर पहुँच जाते थे! लेकिन आज इन बत्तखों का नामोनिशान तक नहीं है।

लेकिन वे अभी भी कहीं तो मौजूद हो ही सकती हैं। आपको केवल उन्हें पूर्वी हिमालय से लेकर उत्तरी म्यांमार और शायद वियतनाम तक खोजना होगा। और शायद आप उन्हें तब तक नहीं ढूँढ पाएँगे जब तक कि आप ऊँची चोटियों पर न चढ़ जाएँ, दूर-दराज़ के जंगलों के तालाब का दौरा न कर आएँ, जब तक सबसे अच्छे आदिवासी वन्यजीव विशेषज्ञ से न मिल लें या लगातार कई दिनों तक दो डिग्री सेंटीग्रेड वाली सर्द बरसाती रातें न बिता लें। शायद इस गुत्थी का जवाब छुपा है, गर्म हवा के गुब्बारे में बैठ इन क्षेत्रों में धीरे-धीरे यात्रा कर, जंगल के सबसे ऊँचे तालाबों पर रुककर इन पक्षियों को ढूँढने में। तब यह एक कमाल की यात्रा होगी।

ऐसी ही न जाने कितनी गुत्थियाँ सुलझ जाने को बेताब हैं - मलय सन बीयर, पिग्मी रायनो (बौना गैंडा), कान्हा नेशनल पार्क का बारहसिंगा, हिमालय की बटेर (जिसे आखिरी बार 1877 में देखा गया था)...! क्या कोई इन्हें सुलझाने के लिए तैयार है?

की झाड़ियों को कहते हैं और 'कोडी' किसी भी प्रकार के मुर्गे को सन्दर्भित करता है। मैं हैरत में था कि क्या वाकई में ऐतन्ना ने उस पक्षी को खोज निकाला है जिसकी मुझे तलाश है!

यह खोज मुझे पूर्वी घाट के कई अन्य इलाकों में ले गई। यह भागदौड़ और उससे सम्बन्धित समस्त यात्राएँ मैंने अपनी भरोसेमन्द मोटर-साइकिल (जिसे मैं एक पुराना वफादार साथी मानता था) पर अपने कैंपिंग उपकरणों के साथ तय की थी। सामान्य मौसम वाले दिन मैं ऐतन्ना को ढूँढने के लिए तुरन्त निकल पड़ता लेकिन उस रात काफी मूसलाधार बारिश हो रही थी। मैं जानता था कि पेन्नर नदी का पानी सिद्दवट्टम की उस नीची सड़क के ऊपर से बह रहा होगा और ऐसी स्थिति में नदी को पार करना असम्भव होगा।

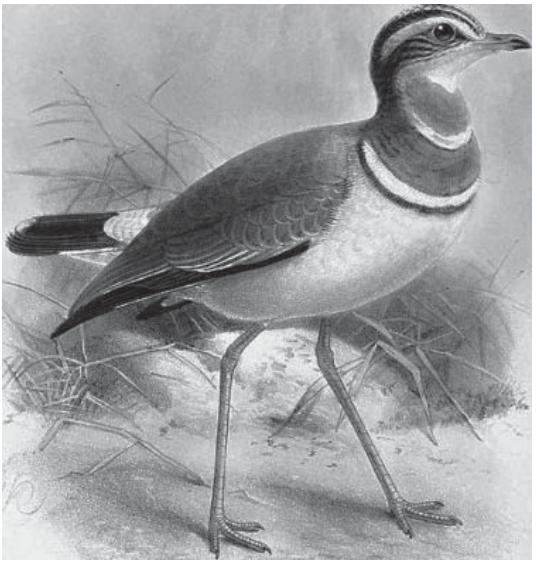

चित्र-2: *जॉन जेरार्ड क्यूलेमैन्स द्वारा बनाया गया डबल-बैंडेड कोर्सर का चित्र।*

एक पक्षी की तलाश में

इतनी तेज़ बारिश में पक्षी को उस रात न देख पाने को लेकर मन में निराशा के भाव थे लेकिन मैं फिर भी उम्मीद करता रहा कि आज के दिन हमें शायद विज्ञान के लिए कुछ तो नया देखने को मिल जाएगा।

रात में करीब तीन बजे बारिश का प्रकोप कुछ कम हुआ और मैं चार बजे अपनी मोटरसाइकिल उठाकर निकल पड़ा। बारिश अभी भी जारी थी और सड़क पर अँधेरा था। आम तौर पर रात के समय भी, कडप्पा-चेन्नई मार्ग पर, बड़े वाहनों की काफी आवाजाही रहती है। लेकिन शुक्र है बारिश का, जिसके कारण सड़क खाली-खाली ही थी।

मैंने सड़क के किनारे का एक जंक्शन भाकरपेटा (जो एक रेलवे

स्टेशन भी है) पार किया और उत्तर दिशा में सिद्दवट्टम की ओर मुड़ गया। नदी के पानी का बहाव तेज़ था और वह उस निचली सड़क के ऊपर से अभी भी बह रही थी। इसलिए मैं भाकरपेटा की तरफ वापस मुड़ गया और मैंने रेलवे स्टेशन पर ही अपना डेरा डाल लिया। मेरी मोटरसाइकिल स्टेशन के बाहर की रेतीली सड़क पर धँस रही थी इसलिए रेलवे प्लेटफॉर्म ही एकमात्र आश्रयस्थल था जो मुझे और मेरे वाहन को बारिश से बचा सकता था। इस तरह मैं बरसात की काली रात में अपनी मोटरसाइकिल के साथ एक छोटे-से प्लेटफॉर्म पर बिलकुल अकेला डटा हुआ था - एक पक्षी की तलाश में!!

एक घण्टे बाद मैंने एक बार फिर नदी का रुख किया। वहाँ पहुँचने पर देखा कि पानी के बहाव के नीचे सड़क हल्की-हल्की नज़र आ रही थी, इसलिए मैंने नदी पार करने का साहस किया। ऐतन्ना एक स्थानीय आदिवासी समुदाय से था जिसे कई प्रकार के जालों के साथ छोटे पक्षियों और प्राणियों को पकड़ने में महारत हासिल थी। वह बेसब्री से इन्तज़ार कर रहा था और मुझे सीधे अपने घर ले गया, उस पक्षी को दिखाने जिसे वह 'कलिवि कोडी' होने का दावा कर रहा था। वह पक्षी जिसकी तलाश में मैं जुटा हुआ था।

मैंने जैसे ही उसे देखा, मेरा दिल खुशी से भर गया। वह वाकई में 'जेरडॉन कोर्सर' या डबल-बैंडेड कोर्सर ही था। वही पंछी जिसे 1848 के बाद से नहीं देखा गया था। मैं उसे उसके माथे पर बने सफेद रंग के विशिष्ट *नामम* चिह्न और उसकी छाती पर काले रंग के दोहरे मालानुमा पैटर्न से घिरे गले के लाल धब्बे से पहचान सकता था।

वह ऐतन्ना के हाथ पर बड़े आराम-से बैठी हुई, मुझे अपनी मोतियों जैसी आँखों से टुकुर-टुकुर निहार रही थी। मैं बारिश से भीगी उस कुटिया में खड़ा था, बिलकुल हक्का-बक्का, कुछ न बोल पाने की हालत में। इतने में ऐतन्ना मेरे कान में धीरे-से बोला, "अन्ना, क्या यह वही चिड़िया है? क्या यह आपकी 'कलिवि कोडी' है?" मैंने सिर हिलाकर मूक सहमति दर्शायी।

वन्यजीव अभ्यारण्य की घोषणा

मैं तुरन्त ही सिद्दवट्टम की तरफ यह सोचते हुए भागा कि अब बहुत काम करना है। मैंने बॉम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसाइटी (बी.एन.एच.एस.) और आन्ध्र प्रदेश वन विभाग को फोन लगाया, दोबारा की गई इस अविश्वसनीय खोज के बारे में बताने के लिए। बस फिर क्या था! यह खबर आग की तरह फैल गई। अगले दिन दोपहर मुझे बताया गया कि डॉ. सलीम अली, मशहूर भारतीय पक्षी वैज्ञानिक खुद आ रहे हैं, उस चिड़िया को देखने!

आन्ध्र प्रदेश वन विभाग ने इस

फ़ोटो: भारत भूषण

चित्र-3: *डॉ. सलीम अली, भारत भूषण और ऐतन्ना के साथ साइट पर।*

खोज की अहमियत को पहचाना और तुरन्त ही वहाँ के जंगलों को एक वन्यजीव अभ्यारण्य (वाइल्ड लाइफ सेंचुरी) घोषित कर दिया। चूँकि डबल-बैंडेड कोर्सर का पर्यावास, लंकमलाई पहाड़ी की झाड़ियों में था, उस संरक्षित क्षेत्र को लंकामल्लेश्वर वन्यजीव अभ्यारण्य नाम दिया गया।

यही नहीं, आन्ध्र प्रदेश की सरकार ने अँग्रेज़ी और तेलुगू अखबारों में इस दोबारा की गई खोज के बारे में पूरे-पूरे पेज के विज्ञापन छपवाए थे।

कई सरकारी अधिकारियों ने सोचा कि एक पक्षी, जिसे सन् 1848 के बाद सिर्फ एक बार देखा गया है, के कारण लगभग 500 वर्ग किलोमीटर के बहुत अच्छे जंगलों को नो-डिस्टर्बेंस ज़ोन और वन्यजीव अभयारण्य के रूप में चिह्नित करना मूर्खतापूर्ण था। क्या हम पागल थे? मेरे और ऐतन्ना के अलावा किसी ने उस चिड़िया को नहीं देखा था, न जंगल में और न ही उसके पर्यावास में। चिड़िया की कोई तस्वीर भी मौजूद नहीं थी। लंकामलाई पहाड़ियों में मौजूद अन्य वन्यजीवों के बारे में भी कोई लिखित रिपोर्ट, वैज्ञानिक दस्तावेज़ या विस्तृत सूची मौजूद नहीं थे।

दुखः की बात यह थी कि जिस डबल-बैंडेड कोर्सर को मैंने देखा, वह दो दिन कैद में रहने के बाद मर गई, शायद भारी बारिश के कारण। इस घटना ने हम सभी को दुखी कर दिया। हालाँकि, खुशी की बात यह है कि 1986 के बाद से डबल-बैंडेड कोर्सर को कई बार जंगलों में देखा गया है और इस पक्षी की कई सारी तस्वीरें भी ली गई हैं।

वर्तमान समय में किसी चिड़िया

जेरडॉन कोर्सर के अण्डे की खोज

सन् 1986 में दोबारा की गई जेरडॉन कोर्सर की खोज जितनी रोमांचक है, उतनी रोमांचक कहानी जेरडॉन कोर्सर के अण्डे की खोज की भी है। जेरडॉन कोर्सर का अण्डा स्कॉटलैंड के एबरडीन विश्वविद्यालय के प्राणि संग्रहालय में सुरक्षित रखा है। इस विद्यालय के म्यूज़ियम के प्रमुख डॉ. एलन नॉक्स बताते हैं कि एक दिन उन्हें एक दराज़ में कुछ अण्डे मिले जिन्हें सूचीबद्ध नहीं किया गया था। इनमें से कुछ अण्डे सन् 1900 में संग्रहित किए गए थे। इनमें से एक अण्डे पर लगा लेबल पढ़ा तो यकीन ही नहीं हो रहा था कि यह एक यूरेका क्षण है! कुछ ऐसा खोजना जो दुर्लभ और रोमांचक था। उस लेबल के मुताबिक यह अण्डा दुर्लभ जेरडॉन कोर्सर का था।

अब अगला सवाल था, इसको साबित कैसे किया जाए कि यह अण्डा इस दुर्लभ और अल्पज्ञात पक्षी का ही है। डॉ. नॉक्स इस अण्डे को हर्टशायर स्थित ट्रिंग प्राकृतिक संग्रहालय में मौजूद अण्डा संग्रह में लेकर गए। वहाँ इस अण्डे का मिलान जब अन्य कोर्सर प्रजातियों के साथ करके देखा गया, तो समझ आया कि यह अन्य कोर्सर प्रजातियों से मेल नहीं खाता। यानी सम्भव है कि यह जेरडॉन कोर्सर हो सकता है। लेकिन अभी इसका भी सत्यापन होना बाकी था। अब इस अण्डे के भीतरी हिस्से से झिल्ली का एक छोटा टुकड़ा लेकर उसका डीएनए प्रोफाइलिंग किया गया। इसके बाद ट्रिंग के संग्रहालय में सुरक्षित रखे गए जेरडॉन कोर्सर के पंजे की खाल के नमूने के साथ इसका मिलान किया गया। डीएनए मैचिंग से यह साबित हो गया कि एबरडीन विश्वविद्यालय में मिला अण्डा जेरडॉन कोर्सर का ही है, जिसका सम्बन्ध दक्षिण भारतीय राज्य से है।

यह अण्डा भारत से एबरडीन विश्वविद्यालय तक कैसे पहुँचा, इसका भी एक

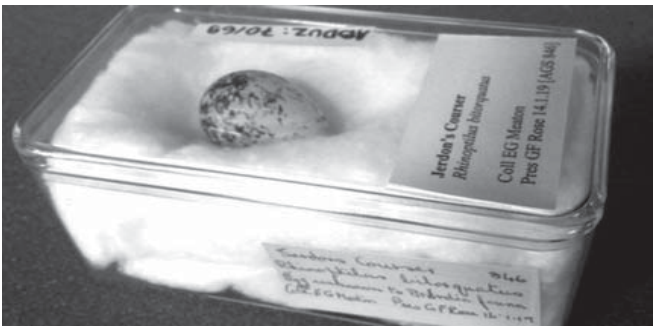

चित्र-4: *एबरडीन विश्वविद्यालय में संरक्षित भारत के एक लुप्तप्राय पक्षी जेरडॉन कोर्सर का दुर्लभ अण्डा।*

रोचक किस्सा है। यह अण्डा अर्नेस्ट मीटन द्वारा एकत्रित संग्रह का हिस्सा था। मीटन पशु चिकित्सक थे और सम्भवतः 1917 के आसपास कोलार गोल्ड फील्ड में काम करते थे। सन् 1919 में मीटन के इस संग्रह को कलकत्ता की जूटमिल में बतौर इंजीनियर काम कर रहे जॉर्ज रोज़ ने खरीद लिया। बाद में, जॉर्ज ने एबरडीन लौटकर एबरडीन ग्रामर स्कूल को यह संग्रह दान दे दिया। 1970 के दशक में ग्रामर स्कूल ने यह संग्रह एबरडीन यूनिवर्सिटी को सौंप दिया जहाँ अगले तीस साल तक यह संग्रह दराज़ में जस-का-तस सुरक्षित रखा रहा। जब इत्तेफाक से डॉ. नॉक्स ने दराज़ को खोला तब कहीं जाकर सन् 2013 में दुनिया जेरडॉन कोर्सर के अण्डे से रूबरू हो सकी।

– विविध स्रोतों से संकलित

को पकड़ना और उसका प्रदर्शन करना गैर-कानूनी है। वन्य जीवन संरक्षण अधिनियम 1972 की अनुसूची-1 के अनुसार जीव का शिकार करना अथवा कैद में रखना कानूनन जुर्म है।

डबल-बैंडेड कोर्सर की पुनः खोज के बाद हमें यह ज्ञात हुआ कि पूर्वी घाट के जंगलों में ऐसी कई स्थानिक प्रजातियाँ पाई जाती हैं। उनमें शामिल हैं - पीले गले वाली बुलबुल जो एक सुन्दर और रहस्यमय पक्षी है, सुनहरी रंग की गेक्को (छिपकली) जो अपना रंग सुनहरे से हल्के भूरे और जैतूनी भूरे रंग में बदल सकती है, और लगभग बौना ताड़ का पेड़, *साइकस बेड्डोमी।*

और आज जब मैं उस रोमांचक दिन के बारे में, ऐतन्ना और मेरी पुरानी वफादार मोटरसाइकिल के बारे में सोचता हूँ तो मैं यह सोचने की हिम्मत भी कर लेता हूँ कि शायद किसी दिन वह गुलाबी सिर वाली बत्तख, जिसे अब विलुप्त माना जाता है, को भी एक दिन.....?!!!

भारत भूषण: जीवविज्ञानी, बर्डवॉचर, शिक्षक और प्रशिक्षक हैं। वे भारतीय उप-महाद्वीप के प्राचीन ज्ञान तंत्रों व विज्ञानों के बहुत उत्साही शिक्षार्थी रहे हैं। पुणे में रहते और काम करते हैं।

अँग्रेज़ी से अनुवाद: निधि सोलंकी: दस वर्षों से शिक्षा के क्षेत्र में काम कर रही हैं, मुख्य रूप से वैकल्पिक शिक्षा में, जिसमें पूछताछ-आधारित शिक्षा पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है। 'आनंद निकेतन स्कूल, भोपाल', 'अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन', 'एकलव्य फाउंडेशन', 'राजघाट बेसेंट स्कूल (कृष्णमूर्ति स्कूल)' और 'प्रकृति स्कूल, नोएडा' जैसी जगहों पर काम करने का अनुभव है। पक्षी देखना, प्रकृति में रहना और बच्चों के साथ काम करना पसन्द है।

सौजन्य से: कल्पवृक्ष और राष्ट्रीय जैव विविधता और रणनीतिक कार्य योजना।

यह लेख *चंदामामा* (अँग्रेज़ी) के अंक मार्च 2003 से साभार।

गणित में सन्दर्भगत समस्याएँ

स्कूली शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा का दृष्टिकोण

हृदय कान्त दीवान

नीति और कार्य सम्बन्धी संवाद और कार्यक्रम गणित में अधिगम और क्षमता की कमी पर ध्यान देने की कोशिश कर रहे हैं। इसके समानान्तर एक प्रक्रिया के रूप में, जब से पाठ्यचर्या रूपरेखाओं में इस पर ज़ोर दिया जाने लगा है कि कौन-सा गणित पढ़ाया जाए, तब से ही यह चिन्ता का एक विषय रहा है। महत्वपूर्ण गणित किसे माना जाए, खास तौर से गणित शिक्षण के सन्दर्भ में, इसकी समझ विकसित हो रही है। जब इस्तेमाल में आसान कैलकुलेटर अब सुलभ हैं, तब क्या इस बात की आवश्यकता है कि मूलभूत गणित शिक्षा केवल कलन विधियों (एल्गोरिदम) या गणना युक्तियों को रटने पर केन्द्रित रहे?

स्कूली शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा (NCF-SE) 2023 के अनुसार, *सवाल तैयार करने, कई वैकल्पिक हल तैयार करने, इष्टतम (optimal) हल चुनने के लिए विभिन्न हलों का मूल्यांकन करने और हल लागू करने की क्षमता सभी चार लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए अपरिहार्य है। जिन सवालों के लिए मात्रात्मक मॉडल की आवश्यकता होती है, विभिन्न गणितीय प्रक्रियाओं की महारत की आवश्यकता होती है – जोड़ और घटाव के सरल अंकगणितीय कौशल से लेकर बीज-गणितीय समीकरणों के अधिक जटिल हल तक की। सवालों को हल करने के लिए कम्प्यूटेशनल मॉडल के उपयोग के लिए कम्प्यूटेशनल कौशल की आवश्यकता होगी। तार्किक कौशल में औपचारिक और अनौपचारिक, दोनों तरह से तर्कों का निर्माण और मूल्यांकन शामिल है।*

इस दृष्टिकोण और इससे भी अधिक के साथ हम विद्यार्थी की इन क्षमताओं के विकास के लिए चुने गए सवालों पर दिए गए ज़ोर पर गौर करते हैं। सन्दर्भ की दृष्टि से प्रासंगिक सवाल महज़ इबारती सवाल नहीं होते हैं जिन्हें आकर्षक चित्रों के साथ प्रस्तुत किया जाता है। बेशक, उन्हें बच्चों के जीवन के अनुभवों से उभरना चाहिए। साथ ही, बच्चे को यह समझ आना चाहिए कि सवाल हल करने की ज़रूरत क्या है और ये हल उसके दैनिक जीवन और निर्णयों पर कैसे प्रभाव डाल सकते हैं।

ज़रूरी अवसरों का अभाव

गणित की सामान्य कक्षा विद्यार्थियों को ऐसे अवसर नहीं देती है और लगभग सभी स्कूलों में, बच्चों और शिक्षकों के पास गणित और सवाल हल करने का मज़ा लेने के लिए समय नहीं होता है। न तो पढ़ाई जाने वाली अवधारणाओं के बारे में आराम-से संवाद के लिए समय आवण्टित किया जाता है और न ही इन अवधारणाओं को बच्चों के परिवेश से जोड़ा जाता है। उदाहरण के लिए, गणित या मैथ मैजिक शृंखला (चित्र-1) का एक सवाल वैसे तो इसलिए तैयार किया गया है कि बच्चे उनके सन्दर्भ से सम्बन्धित गणितीय कार्य करें, लेकिन इसे अक्सर यांत्रिक रूप से पढ़ाया जाता है। सवाल ऐसे सिक्कों पर टिका है जो अब भारत में प्रचलन में नहीं हैं। इस वजह से बच्चों के लिए इससे जुड़ पाना तब तक मुश्किल होगा जब तक कि यह दादा-दादी के साथ व्यापक मुद्दों पर संवाद या महँगाई जैसे व्यापक मुद्दों पर चर्चा का हिस्सा न बने।

दूसरा, विद्यार्थियों को समस्या की प्रकृति जानने और उसमें से प्रासंगिक जानकारी निकालने का कोई अवसर नहीं दिया जाता है। ऐसा होगा तभी वे सवाल का उद्देश्य समझ पाएँगे और यह समझ पाएँगे कि उपलब्ध जानकारी से चाही/माँगी गई जानकारी तक कैसे पहुँचा जा सकता है। प्रयास तो यह होता है कि कलन विधियों (एल्गोरिदम) को चरणबद्ध तरीके से लागू करने और एक मशीनी कवायद (ड्रिल) की तरह चरणों को याद रखने की क्षमता विकसित कर दी जाए। सन्देश है, 'चरणों से भटकें

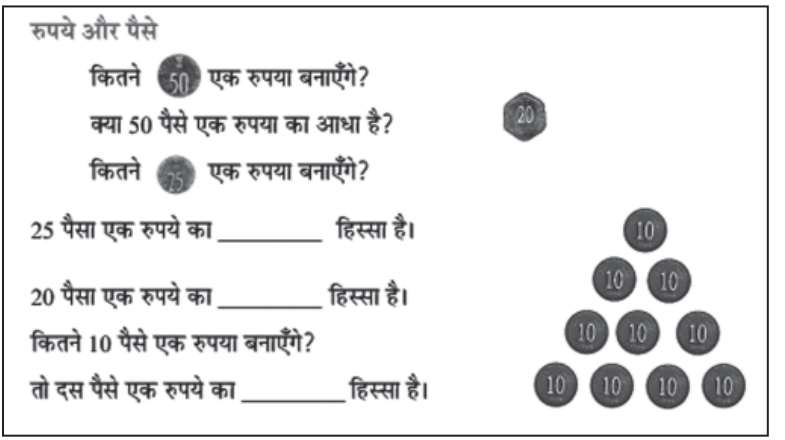

चित्र-1: एनसीईआरटी पाठ्यपुस्तक, गणित, कक्षा-5, अध्याय-4, पेज-65

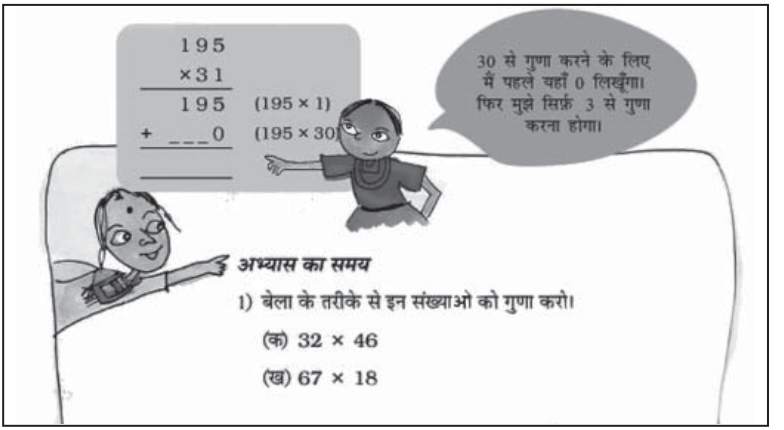

चित्र-2: *एनसीईआरटी पाठ्यपुस्तक, गणित, कक्षा-5, अध्याय-13, पेज-171*

नहीं, उन्हें सटीक ढंग से लागू करें'। सलाह यह है कि अपनी अवधारणात्मक समझ का उपयोग न करें और हल की एक अलग विधि न अपनाएँ, क्योंकि आप गलती कर सकते हैं। कक्षा की प्रक्रियाएँ और तथाकथित सीखने-सिखाने की सामग्री (टीएलएम), अक्सर इसी उद्देश्य से तैयार की जाती हैं। एक तरह से, उनसे उम्मीद की जाती है कि वे शिक्षार्थियों के सामने कलन विधि के 'ठोस' चरण प्रस्तुत करें और उन्हें याद रखने में मदद करें। वे न तो प्रक्रिया और चरण समझाने की कोशिश करती हैं और न ही बच्चों को वैकल्पिक रणनीतियों का उपयोग करने की गुंजाइश देती हैं। सवाल भी इस तरह से तैयार किए जाते हैं कि यंत्रवत् कलन विधियों के अभ्यास पर ज़ोर दिया जा सके। उदाहरण के लिए, एनसीईआरटी की कक्षा-5 की पाठ्यपुस्तक का यह पृष्ठ (चित्र-2), हालाँकि केवल गुणन की कलन विधि के संखण्डन और खण्डों में इसके अभ्यास पर केन्द्रित है, फिर भी यह सवाल शिक्षक के लिए कलन विधि सम्बन्धी 'क्यों' पर चर्चा करने के लिए पर्याप्त गुंजाइश दे सकता है। लेकिन सवाल यह है कि यह किया कितनी बार जाता है?

किसके विचार, किसकी रणनीति?

अमित कुलश्रेष्ठ, अपने पेशे और आनन्द, दोनों के लिए, एक गणित शिक्षक और शोधकर्ता हैं। पत्रिका *पाठशाला भीतर बाहर* में उनके लेख और उसी पर बाद में आयोजित वेबिनार का सारांश नीचे दिया गया है।

ज़्यादातर विद्यार्थियों को इबारती सवाल हल करने के तरीके बताने की

जल्दी में, शिक्षक सुझाव देते हैं कि वे महत्वपूर्ण शब्दों (की-वर्ड) की तलाश करें ताकि यह तय करने में मदद मिल सके कि किन संक्रियाओं (ऑपरेशन) का उपयोग करना है। उनका तर्क होता है कि कक्षा में पूरा ध्यान वास्तव में इस बात पर रहता है कि बच्चों को सही संख्याएँ निकालने, सही कलन विधियाँ (एल्गोरिदम) लागू करने और सवाल हल करने के लिए ज्ञात मानक नियमों को याद रखने का अभ्यास कराया जाए। कक्षा का ध्यान स्पष्टीकरण देने और उत्तर तक पहुँचने के लिए अपनाए जाने वाले चरणों पर केन्द्रित होता है।

बच्चों को इस बात की गुंजाइश देने के लिए कोई स्थान नहीं होता है कि वे दिए गए सवालों पर विचार करें और अपनी रणनीति और दृष्टिकोण विकसित करें। हालाँकि, वर्तमान राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा (एनसीएफ) सहित राष्ट्रीय पाठ्यचर्या दस्तावेज़ दृढ़तापूर्वक तर्क देते हैं कि बच्चों को न केवल गुंजाइश दी जानी चाहिए बल्कि सवाल हल करने के लिए अपनी रणनीति विकसित करने और खोजने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। उन्हें यह समझना सीखना चाहिए कि सवाल हल करने के लिए कई रणनीतियाँ हो सकती हैं और कभी-कभी, कई उत्तर भी हो सकते हैं।

स्कूली शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा (2023) यह सलाह भी देती है कि कक्षाएँ कई तरीकों को प्रोत्साहित करें ताकि विद्यार्थी अपनी रणनीतियाँ तैयार कर सकें। गणित के लिए एनसीईआरटी की पाठ्यपुस्तकें और साथ ही, स्कूली शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा बच्चों के लिए सवाल बनाने में सक्षम होने की आवश्यकता पर भी ज़ोर देती हैं।

अस्वाभाविक सन्दर्भ

यहाँ कुछ उदाहरण दिए गए हैं जो बताते हैं कि सवाल अक्सर ऐसे शब्दों में लिखे जाते हैं और उनमें ऐसी स्थितियाँ शामिल होती हैं जो बच्चों के सन्दर्भ में स्वाभाविक नहीं होती हैं।

1. एक पेड़ पर 114 पक्षी बैठे थे। 21 और पक्षी उड़कर पेड़ पर आए। पेड़ पर कुल मिलाकर कितने पक्षी थे?

यह सम्भव नहीं है कि कोई भी पेड़ की तरफ उड़ते पक्षियों को गिन सके। इसलिए, सवाल का सन्दर्भ किसी भी वास्तविक अनुभव, जिससे बच्चे जुड़ सकें, की बजाय महज़ औपचारिकता अधिक लगता है।

2. जेन के पास 63 मीटर रिबन है। यदि वह इसमें से 56 मीटर 21 सेमी रिबन काटती है, तो रिबन की लम्बाई कितनी बचेगी?

भले ही हम नाम बदल दें (जैसा कि अक्सर स्थानीय सन्दर्भ शामिल करने

के लिए किया जाता है), सवाल में संख्याओं का कोई मतलब नहीं है। 63 मीटर के रिबन के बारे में आम तौर पर नहीं सुना जाता है और फिर 56 मीटर और 21 सेमी की लम्बाई को काटना भी स्वाभाविक नहीं लगता।

3. एक किराना दुकान में सुबह 2510 किलो 350 ग्राम गेहूँ था। दिनभर में 890 किलो 600 ग्राम गेहूँ बिक गया। शाम को दुकान में कितना गेहूँ बचा था?

यह स्टॉक में गेहूँ की एक विचित्र मात्रा है और बेची गई मात्रा भी उतनी ही विचित्र है! आम तौर पर दुकानें गेहूँ का स्टॉक ग्राम की बजाय बोरियों की संख्या में रखती हैं।

4. विशाल 48 सेमी ऊँचाई की एक पुस्तक मीनार बनाना चाहता है। यदि प्रत्येक किताब की मोटाई 12 मिमी है, तो चाही गई ऊँचाई की मीनार बनाने के लिए उसे कितनी किताबों की ज़रूरत होगी?

5. एक किराना दुकान पर 144 किलो 780 ग्राम वज़नी फ्रोज़न सब्ज़ियों का एक डिब्बा पहुँचाया गया। यदि डिब्बे के अन्दर समान वज़न की 15 थैलियाँ थीं, तो प्रत्येक थैली का वज़न क्या था?

ये दोनों सवाल सन्दर्भगत माने जाते हैं। लेकिन यह स्पष्ट है कि इनका उद्देश्य विद्यार्थियों को एक संख्या को दूसरी से विभाजित करने का अभ्यास कराना है। निश्चित रूप से किसी भी विचारशील विद्यार्थी को आश्चर्य होगा कि एक विशिष्ट ऊँचाई की मीनार कौन बनाना चाहेगा? यदि इसकी ज़रूरत है भी, तो किसी के पास एक ही ऊँचाई की इतनी सारी किताबें क्यों होंगी और उसे थप्पी में पुस्तकों की संख्या पता करने की ज़रूरत क्यों होगी? दूसरे सवाल में सब्ज़ियों के डिब्बों के इतने सटीक वज़न की ज़रूरत क्यों होगी?

6. एक कमरे की लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई क्रमशः 24, 18 और 12 फीट है। सबसे लम्बा टेप कौन-सा होगा जिसका उपयोग इन्हें मापने के लिए किया जा सकता है?

इसके बारे में मुद्दा यह है कि जब बच्चे मापने वाले टेप का उपयोग करते हुए देखते हैं तो उनका सामान्य अनुभव यह होता है कि छोटी दूरी को मापने के लिए बहुत लम्बे टेप का उपयोग किया जा सकता है। यदि हम टेप को उठाना नहीं चाहते हैं और टेप के पिछले स्थान के अन्तिम बिन्दु से माप जारी नहीं रखना चाहते हैं तो हमें एक लम्बे टेप की ज़रूरत होती है। अन्यथा, हम किसी भी टेप का उपयोग कर सकते हैं और लम्बाई माप सकते हैं। इसलिए, हम 24 फीट से अधिक लम्बाई वाले किसी भी टेप का उपयोग कर सकते हैं, जिसमें 24 फीट लम्बा टेप भी शामिल है। सवाल तैयार करने वालों का इरादा यह परीक्षण करना था कि क्या बच्चा 24,

18 और 12 का महत्तम समापवर्तक ढूँढ सकता है और क्या वह उसे सबसे लम्बे टेप के रूप में उपयोग कर सकता है ताकि अलग-अलग भागों/ टुकड़ों में मापने की ज़रूरत न हो। सवाल की शब्दावली उसके उद्देश्य से मेल नहीं खाती है। सवाल की भाषा कभी-कभी अस्पष्ट हो सकती है, लेकिन अपेक्षित जवाब बहु-विकल्पों की अनुमति नहीं देता है।

स्पष्ट रूप से, यहाँ विचार यह है कि बच्चों से कुछ संक्रियाएँ (ऑपरेशन) कराई जाएँ और वह भी कुछ विशिष्ट प्रकार की संख्याओं के साथ और सन्दर्भ केवल एक दिखावा है जो संख्याओं की अवधारणा या धारणा की समझ प्राप्त करने में कोई मदद नहीं करता है। यह उन्हें प्रक्रियात्मक स्पष्टता भी प्रदान नहीं करता है, क्योंकि वे जवाब के रूप में प्राप्त संख्या को समझ नहीं पाते हैं और यह जानने का कोई तरीका नहीं है कि यह लगभग सही भी है या नहीं।

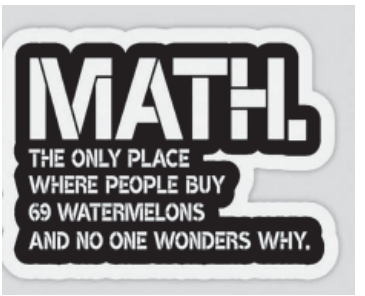

चित्र-3: *गणित - एकमात्र स्थान जहाँ लोग 69 तरबूज़ खरीदते हैं और कोई आश्चर्य नहीं करता कि ऐसा क्यों।*

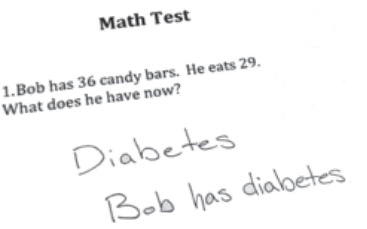

चित्र-4: *गणित का टेस्ट - बॉब के पास 36 कैंडी बार हैं। वह 29 खा लेता है। अब उसके पास क्या है? मधुमेह। बॉब को मधुमेह है।*

हालाँकि, इन सभी को सवाल की भाषा समझने का अभ्यास कहा जा सकता है, लेकिन यह गणित को जीवन से जोड़ने और सम्बन्ध समझने के मामले में कतई मदद नहीं कर पाते हैं। वास्तव में, जटिल संख्याओं और कलन विधियों (एल्गोरिदम) के बोझिल उपयोग से ये समस्याएँ अक्सर और ज़्यादा पेचीदा हो जाती हैं। अक्सर यह तार्किक रूप से स्पष्ट नहीं होता है कि हल तक कैसे पहुँचा जाए और शिक्षक के लिए समाधान के चरणों की रूपरेखा बताना आवश्यक हो जाता है। विद्यार्थी इसे याद कर लेते हैं। लेकिन उन्हें यह स्पष्ट नहीं होता है कि इस तरीके में सुझाई गई विशिष्ट विधि का पालन करने की ज़रूरत क्यों है और इससे जवाब कैसे मिल जाता है।

कुछ सुझाव

यहाँ कुछ सवाल सुझाए गए हैं जो बच्चे के सन्दर्भ से बेहतर ढंग से सम्बद्ध हो सकते हैं।

1. सुरेश रोज़ सुबह नहाने के लिए बाल्टी और मग का इस्तेमाल करता है। उसने देखा कि भरी हुई बाल्टी से उसे पूरे 12 मग पानी मिलता है। हालाँकि, एक दिन, उसने पाया कि उसे केवल 9 मग पानी मिला। उसे एहसास हुआ कि यह एक नया मग था। पुराने की तुलना में नए मग में क्या अन्तर रहा होगा?

यह सवाल अलग-अलग पात्रों में पानी भरने से सम्बन्धित हो सकता है और दिलचस्प संवादों के साथ-साथ अन्य अनुभव भी प्रदान कर सकता है। इससे धारिता (कपैसिटी) को अनुपातों और भिन्नों से भी जोड़ा जा सकता है।

2. वर्गाकार टाइलों का उपयोग करके आप 144 वर्गमीटर क्षेत्रफल वाले वर्गाकार फर्श को भरने के लिए विभिन्न साइज़ की कितनी टाइलों का उपयोग कर सकते हैं?

3. क्या कोई आयताकार टाइल भी 144 वर्ग मीटर के समान फर्श क्षेत्रफल को भर सकती है? प्रत्येक स्थिति में किस साइज़ के आयतों और कितने आयतों की आवश्यकता होगी?

4. यह देखते हुए कि फर्श का क्षेत्रफल a^2 वर्ग मीटर है, जहाँ 'a' एक पूर्ण संख्या है, वर्गाकार टाइलों की सम्भावित साइज़ क्या है जो सतह को भर सकेगी?

ध्यान दें कि सवाल हर चरण में अधिक जटिल (और अधिक दिलचस्प) होते जा रहे हैं। यदि स्वयं इन सवालों को हल करने का प्रयास करें, तो हम देख सकते हैं कि यह संयोजनों की संख्या की ओर ले जाता है और ये अपने आप में अन्वेषण के अवसर होते हैं। या कोई इससे आगे भी जा सकता है और इसे इस तरह से हल करने का एक तरीका ढूँढने का प्रयास कर सकता है जो संख्याओं के सम्भावित संयोजनों या वर्गाकार टाइलों के आकार के लिए एक सामान्य सूत्र निर्माण की गुंजाइश देता हो।

* * *

ऐसे सवाल समय की माँग हैं जो गणितीय वस्तुओं और अवधारणाओं को समझने और जिज्ञासा और रोमांच की भावना विकसित करने में विद्यार्थियों को सक्षम बनाते हों। ऐसे सवाल तैयार करने के दौरान एक अच्छा मार्गदर्शक प्रश्न यह है: *अभ्यास कार्य देने का उद्देश्य क्या है और हम गणित की प्रकृति और उसके अधिगम को कैसे देखते हैं?* सवाल हल करने के लिए शिक्षार्थी को क्या करना होगा? किसी कार्य के उद्देश्य गणित की नींव की हमारी समझ और अधिगम के मार्ग की हमारी कल्पना से उत्पन्न होते हैं। और आपने शिक्षार्थी को जो कार्य दिया है, उसमें यह स्पष्ट होना चाहिए कि शिक्षार्थी को क्या करना है।

इस समय इस प्रकार के सवाल यदि पूरी तरह से अनुपस्थित नहीं तो दुर्लभ ज़रूर हैं जिनके इर्द-गिर्द सन्दर्भगत संवाद सुगम बनाए जा सकते हैं। यह सच है कि इन्हें तैयार करना आसान नहीं है, साथ ही यह भी सम्भव नहीं है कि इन पर चर्चा के लिए ज़्यादा समय आवण्टित किया जा सके। मूल्यांकन के बारे में चिन्ता की वजह से गणित सीखने-सिखाने की पूरी प्रक्रिया मुख्यतः याद रखने एवं कलन विधि फोकस पर केन्द्रित रहती है। ऐसे किसी भी मूल्यांकन में समझने और गणित के बारे में अन्वेषण करने व सहज महसूस करने की किसी भी वास्तविक क्षमता की कमी बनी रहती है। स्कूली शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा (NCF-SE) 2023 बताती है कि 'अधिकांश मूल्यांकन तकनीकें और सवाल तथ्यों, प्रक्रियाओं और सूत्रों को याद रखने पर केन्द्रित रहते हैं'। अलबत्ता, मूल्यांकन का ध्यान समझ, तर्क और इस बात पर केन्द्रित होना चाहिए कि विभिन्न सन्दर्भों में किसी गणितीय तकनीक का उपयोग कब और कैसे किया जाए। यह कोई नया विचार नहीं है और सदी की शुरुआत से ही और भारत के कुछ स्थानों में इससे भी पहले व्यक्त किया गया है, लेकिन इसे स्थापित करने का तरीका ढूँढना बेहद कठिन रहा है। यदि ऐसा किया जाता है, तो स्कूली शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा में परिभाषित गणित शिक्षा के लक्ष्यों को पूरा करने की कहीं अधिक सम्भावना होगी।

हृदय कान्त दीवान: *एकलव्य* का गठन करने वाले समूह के सदस्य। होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम और प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम से सम्बद्ध रहे। विद्या भवन सोसायटी, उदयपुर और *अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन* के साथ भी लम्बा जुड़ाव रहा।

अँग्रेज़ी से अनुवाद: सुबोध जोशी: स्वतंत्र रूप से अनुवाद करते हैं। अखबार और पत्रिकाओं में विभिन्न विषयों पर लेख लिखते हैं और विभिन्न संस्थाओं के लिए अनुवाद कार्य करते हैं। सम्पादकीय कार्य का भी अनुभव। विकासात्मक विकलांगताओं पर आपकी एक पुस्तक प्रकाशित हुई है। आप स्वयं मस्क्युलर डिस्ट्रॉफी से प्रभावित हैं।

यह लेख पत्रिका *एट राइट एंगल्स* अंक-18, मार्च 2024 से साभार।

सन्दर्भ:

1. https://cdn.azimpremjiuniversity.edu.in/apuc3/media/publications/downloads/Pathshala-Bheetar-Aur-Bahar_17-Issue-Sept-2023.pdf
2. https://www.youtube.com/watch?v=4tKptfJLPW4&list=PLVI4qkjTdM728SukvE9lLM7eBzg-8BKvM&index=1
3. National Council for Educational Research and Training (NCERT). (2023). https://ncert.nic.in/textbook.php?aejm1=11-13

कॉपी संस्कृति

मीनू पालीवाल

कक्षा 5 की एक बच्ची अपनी कॉपी में कुछ लिख रही थी।

मैं: क्या तुम पढ़ना जानती हो?

बच्ची: नहीं।

मैं: तो फिर तुम क्यों लिख रही हो?

बच्ची: मैडम ने लिखने के लिए कहा है।

मैं: पर क्यों?

बच्ची: मेरा लेखन अच्छा हो जाएगा, इसलिए।

स्कूलों में, आम तौर पर बच्चे कॉपियों में कुछ-न-कुछ लिखते हुए नज़र आते हैं। कई बार तो वे बच्चे भी जो पढ़ना नहीं जानते। कक्षा 1 और 2 के बच्चों की कॉपियाँ क-ख-ग, क-का-कि, a-b-c, तथा 1 से 100 तक की गिनती से भरी हुई होती हैं। कक्षा 3 से 5 में, बच्चे अक्सर किताब से किसी पाठ को देखकर अपनी-अपनी कॉपियों में उतार रहे होते हैं; या ढेर सारे जोड़, घटा, गुणा और भाग के सवाल मानक एल्गोरिद्म से हल कर रहे होते हैं।

जब किसी स्कूल में विज़िट के लिए जाती हूँ, तो कई मर्तबा मेरे कहे बिना ही कक्षा 1 और 2 के बच्चे अपनी-अपनी कॉपी चेक करवाने मेरे पास आ जाते हैं। उन कॉपियों में उन्होंने वर्णमाला या गिनती लिखी होती है, और वे चाहते हैं कि मैं उसे चेक कर दूँ। यह सब देखकर मैं अक्सर यह सोचती हूँ - क्या इस तरह अपनी कॉपी में यह सब लिखना बच्चों को रोचक लगता होगा? यकीनन नहीं, क्योंकि इसमें बच्चों के लिए कोई अर्थ नहीं है। फिर वे क्यों किसी नए व्यक्ति के आने पर उसे वर्णमाला या गिनती लिखकर दिखाते हैं? इसका एक कारण शायद यह हो सकता है कि अमूमन जो बच्चे यह काम कर लेते हैं, उन्हें शिक्षक शाबाशी देते हैं, और फिर धीरे-धीरे बच्चे यह समझने लगते हैं कि स्कूल में यही काम करना होता है। धीरे-धीरे स्कूल और वास्तविक दुनिया के बीच की दूरी बढ़ती जाती है।

कॉपी पूरी करने की बाध्यता क्यों?

शायद यह बाध्यता शिक्षकों के अपने स्कूली दिनों के अनुभवों तथा अन्य शिक्षकों को भी ऐसा करता देखने के कारण लगाई जाती होगी। इतना ही नहीं, यह संस्कृति पूरे शिक्षा विभाग में व्याप्त है। स्कूल में बाहरी अधिकारियों के भ्रमण के दौरान भी यही - कॉपी कम्प्लीट है या नहीं -

चेक किया जाता है। शायद इसलिए क्योंकि यह चेक व क्रॉस-चेक करना आसान है। शिक्षकों के नज़रिए से – "बच्चे लिख रहे हैं तो कुछ सीख ही रहे हैं," जैसे कि सुन्दर और शुद्ध लेखन, विषयवस्तु पठन, ध्यान केन्द्रित करना आदि। मध्य प्रदेश के कई स्कूलों में, साल में एक बार, बाहर से आए शिक्षा विभाग के अधिकारियों द्वारा (कॉपी) निरीक्षण करवाया जाता है। इसलिए कार्यपुस्तिका और कॉपी भरी होना बेहद ज़रूरी होता है, चाहे असल में बच्चा कुछ जानता हो या नहीं। कुछ शिक्षकों ने इस वजह से कक्षा में बच्चों की अनुपस्थिति बढ़ने की बात भी साझा की है।

आखिर क्यों?

कॉपी पूरी करना इतना ज़्यादा ज़रूरी होता है कि जिस उद्देश्य के लिए किताबें व कार्यपुस्तिकाएँ बनाई गई हैं, वही पीछे रह जाता है। एक बच्ची, किसी अन्य बच्ची की कार्यपुस्तिका से देखकर अपनी कार्यपुस्तिका में लिख रही थी। प्रश्न कुछ इस तरह के थे – 'उन जानवरों के नाम लिखो जिनके शरीर पर बाल नहीं होते'। तथा, 'ऐसे जानवरों के नाम लिखो जिनके कान दिखाई नहीं देते'। जब मैंने कॉपी करके लिखने वाली बच्ची से किताब में लिखे यही प्रश्न पूछे, तो उसने उनके उत्तर ठीक-ठीक बताए। मुझे लगा कि हो सकता है कि इस बच्ची को पढ़ना या लिखना नहीं आता हो, इसीलिए शायद वह दूसरी बच्ची की किताब से देखकर लिख रही है। मैंने उससे पूछा कि क्या वह पढ़ना-लिखना जानती है। उसने बताया कि उसे पढ़ना-लिखना आता है। अब सोचिए, जिस बच्ची को पढ़ना-लिखना आता है, और प्रश्न का उत्तर भी पता है, वह भी किसी और की किताब से देखकर अपनी कॉपी भर रही है!

रटना भी कॉपी संस्कृति

कॉपी भर लेने के बाद उसमें लिखा याद करना (या, रटना) भी कॉपी संस्कृति का हिस्सा है। एक बार एक बच्ची मैडम को अपना सारा याद किया हुआ सुना रही थी। पाठ के उत्तर तो छोड़िए, उसने तो प्रश्न भी याद कर लिए थे! वह बच्ची इतनी रफ्तार से सब याद किया हुआ सुना रही थी कि वह क्या कह रही थी, यह समझने में भी मुश्किल हो रही थी। पाठ भगत सिंह के बारे में था। जब उसने याद किए तीन-चार प्रश्नों के उत्तर दे दिए, तो मैं उस बच्ची के पास गई और पूछा, "भगत सिंह को फाँसी क्यों दी गई थी?" पाठ याद होने के बावजूद बच्ची इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे पाई।

कई बच्चे स्कूल में मीटर से सेंटीमीटर और किलोमीटर में संख्याओं को परिवर्तित कर लेते हैं, लेकिन यदि उनसे यह पूछा जाए कि

आपकी ऊँचाई कितने मीटर है, या आप जिस कमरे में बैठे हैं, उसकी लम्बाई-चौड़ाई कितनी है तो उनमें से कई नहीं बता पाते। बचपन में माँ ने मुझे दो मीटर कपड़ा लाने के लिए कहा। मैं भी किलोमीटर, सेंटीमीटर, मीटर में संख्या बदलने का काम कर लेती थी, परन्तु जब माँ ने कपड़ा लाने को कहा तो मुझे समझ नहीं आया कि दो मीटर कपड़ा भौतिक रूप से कितना लम्बा होगा। यह अनुभव इस बात का सबूत है कि स्कूल और स्कूल के बाहर की दुनिया के बीच में दूरी है, और कक्षा बढ़ने के साथ-साथ यह खाई बढ़ती चली जाती है।

कॉपियों में क्या लिखा?

• पर्यावरण की कॉपी के कुछ पन्ने

एनसीईआरटी की मौजूदा किताबों में बच्चों के लिए करके देखने और किताब में लिखी बातों को अपनी ज़िन्दगी से जोड़ने के बहुत-से मौके हैं। मगर ये सब मौके उन्हीं बातों को कॉपी में उतारने तक ही सीमित रह जाते हैं, जैसा चित्र-1 में देखा जा सकता है। किताब में सुझाई गई गतिविधि के अनुसार, बच्चों को पेड़ों की छाल पर पेपर रखकर पेंसिल से उनकी छाप बनानी हैं, और इस बात पर विचार करना है कि किस पेड़ की छाप कैसी बनी व क्यों।

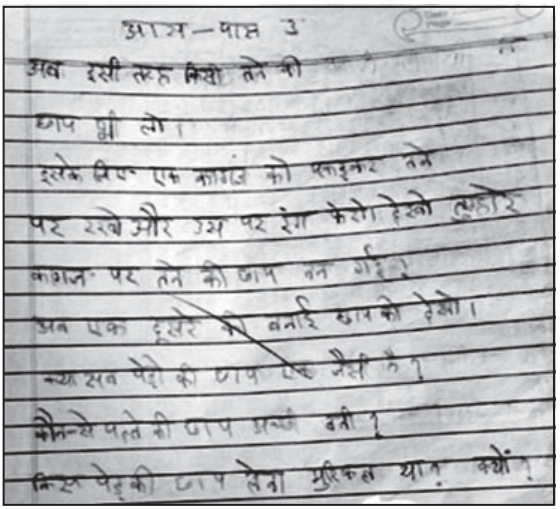

चित्र-1

• अँग्रेज़ी की कॉपी से

जैसा कि चित्र-2 में देखा जा सकता है, शब्दों के बीच जगह नहीं छोड़ी गई है। कहीं कैपिटल तो कहीं स्मॉल अल्फाबेट लिखे गए हैं। यह काम करने में बच्चे का समय और ऊर्जा लग रहे हैं मगर वह सीख क्या रहा है? क्या वह यह नहीं सीख रहा कि स्कूल में जो काम करते हैं, उसका बाहर की दुनिया से कोई वास्ता नहीं होता।

• गणित के पन्ने

चित्र-3 में नज़र आ रहा यह

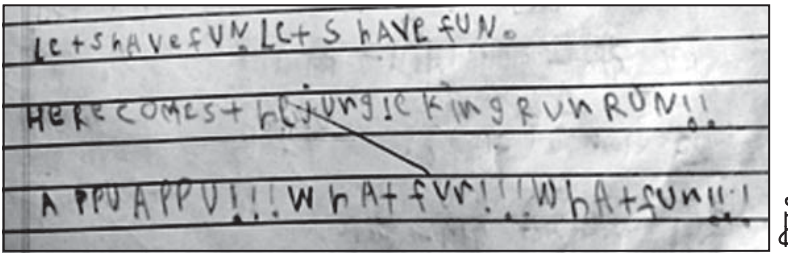

चित्र-2

अभ्यास, दरअसल, क्षेत्रफल की अवधारणा सिखाने वाले हिस्से का है। इसमें बच्चों को 1 सेमी बाय 1 सेमी के डिब्बे गिनकर किसी चीज़ या आकार का क्षेत्रफल निकालना होता है। इसके लिए किताब के एक पन्ने पर 1 वर्ग सेमी वाले डिब्बों की ग्रिड दी गई है, जिस पर बच्चों को अपनी हथेली को ट्रेस करके स्केच बनाना है, और फिर उसका क्षेत्रफल पता करना है। साथ में, यह भी पता करना है कि कक्षा में किसकी हथेली सबसे बड़ी है और किसकी सबसे छोटी। परन्तु चित्र-3 को देखकर आप अन्दाज़ा लगा सकते हैं कि बच्चे ने अपने हाथ को ट्रेस करके स्केच नहीं बनाया है, बल्कि किसी हाथ का 'चित्र' बनाने की कोशिश की है। इतना ही नहीं, यह गतिविधि सीधे किताब के पन्ने पर ही की जानी थी, कॉपी में डिब्बे बनाने की ज़रूरत ही नहीं थी। और फिर इसके बाद (देखें चित्र-4), अपनी और अपनी सहेली की हथेली के क्षेत्रफल सम्भवतः किसी गाइड से देखकर लिखे हैं। हथेलियों के ये क्षेत्रफल आम तौर पर 4 से 6 साल के बच्चों के ही हो सकते हैं, कक्षा-5 के बच्चों की हथेलियों का क्षेत्रफल अमूमन इतना कम नहीं होता। बाद में, उसी कक्षा में यह गतिविधि करवाई जाने के दौरान बच्चों की हथेलियों के क्षेत्रफल 60 से 80 वर्ग सेमी के बीच प्राप्त हुए।

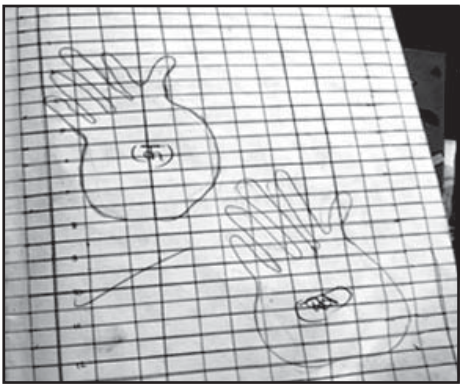

चित्र-3

कॉपी में लेखन गलत?

मैं स्कूलों में कॉपी में किए गए हर काम को गलत नहीं कह रही हूँ, बल्कि कॉपी में

किए गए काम की 'सार्थकता' की तरफ ध्यान दिलाना चाहती हूँ। शिक्षक कक्षा में कुछ समझाते हैं तो उसे याद रखने के लिए या उस बात को दोबारा पढ़ने के लिए यदि बच्चे कॉपी में लेखन का काम करते हैं तो यह सार्थक लगता है। लेखन ज़रूरी है। कक्षा 1 और 2 के बच्चों के लिए, लेखन द्वारा हाथ की मांसपेशियों का सन्तुलन बेहतर करने में भी मदद मिलती है। लेखन के दौरान विषयवस्तु को ध्यान से देखने का समय भी मिलता है; परन्तु यह काम कितना सचेत होकर किया जा रहा है, यह महत्वपूर्ण है। इसके लिए, शिक्षकों के काम के उदाहरणों के साथ, कुछ सुझाव प्रस्तावित हैं।

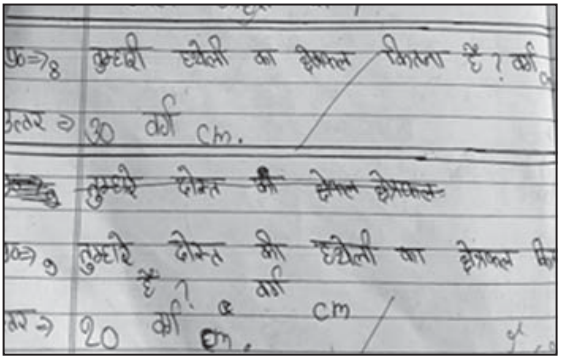

चित्र-4

विषयवार कुछ सुझाव

• हिन्दी

कक्षा 1 और 2 में, शिक्षक यदि ब्लैकबोर्ड पर किसी पाठ के प्रश्नों के उत्तर लिखते हैं, तो बच्चे उन्हें बोर्ड से देखकर कॉपी में लिखें, परन्तु बच्चों को यह पता होना चाहिए कि वे क्या लिख रहे हैं। इसके लिए लेखन से पहले, बच्चों के साथ पाठ के प्रश्नों पर चर्चा की जाए, और बोर्ड पर उत्तर लिखने के बाद शिक्षक द्वारा थोड़ा समय लेते हुए उन्हें पढ़ा जाए। वहीं कक्षा 4 और 5 में, हम यह उम्मीद करें कि प्रश्नों पर चर्चा के बाद बच्चे खुद से ही उत्तर लिखें, और बच्चों की कॉपी देखने के बाद शिक्षक कुछ आम गलतियों पर बोर्ड पर काम करें।

कक्षा अनुभव - मैडम कक्षा-3 में 'मैं हूँ नीम' पाठ पढ़ा रही थीं। शुरुआत में उन्होंने कुछ सवालों की मदद से पाठ का सन्दर्भ स्थापित किया, जैसे - नीम का पेड़ देखा है क्या? कहाँ देखा है? क्या काम आता है? वगैरह। बच्चे कम ही बोले परन्तु जवाब ज़रूर दिए। इसके बाद मैडम ने बच्चों से पाठ पढ़ने के लिए कहा। सारे बच्चे धीरे-धीरे - थोडा जोड़कर, थोडा बिना जोड़े - पढ़ रहे थे।

उन्होंने पाठ पढ़ाने के दौरान भी कई प्रश्न पूछे, जिनके जवाब बच्चों के परिवेश में मौजूद हैं और बच्चों ने इन प्रश्नों के उत्तर भी दिए।

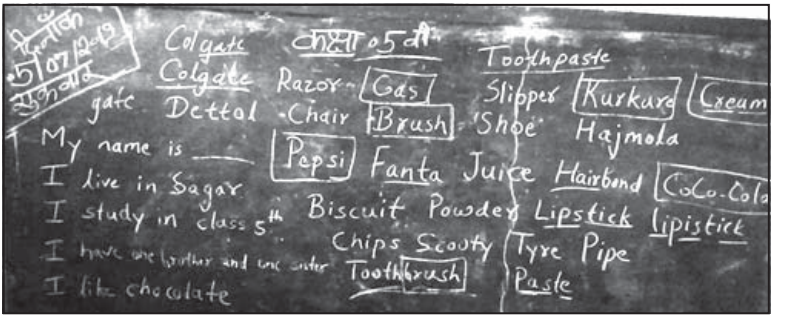

चित्र-5

1. नीम के अलावा और कौन-कौन-से पेड़ों में औषधीय गुण होते हैं?
2. नीम की पत्तियों को कपड़ों और अनाज में सुखाकर ही क्यों रखते हैं?
3. नीम के किस भाग से तेल निकलता होगा?
4. अन्य कौन-कौन-सी चीज़ें खाने में कड़वी होती हैं?

इस प्रक्रिया के बाद ही कॉपी में लेखन का काम किया गया।

• अँग्रेज़ी

बच्चे अपने आसपास से भाषाई ज्ञान व शब्द अर्जन करते रहते हैं। बहुत-से शब्द, जो असल में अँग्रेज़ी के हैं, अँग्रेज़ी नहीं जानने वाले बच्चे भी बड़े ही आराम-से इस्तेमाल करते दिखाई देते हैं। जैसे कक्षा-1 के एक बच्चे ने कहा, "मैंने रूमाल फोल्ड कर लिया।" या "हमें खाना शेयर करना चाहिए" आदि। वैसे तो बच्चे बहुत-से अँग्रेज़ी शब्द, जैसे पिकनिक, हॉस्पिटल, होटल आदि बोलते ही हैं, परन्तु कक्षा-1 के बच्चों से 'फोल्ड' और 'शेयर' शब्द सुनकर मुझे काफी आश्चर्य हुआ।

कक्षा अनुभव - शिक्षा का एक सिद्धान्त कहता है कि बच्चों को कुछ नया सिखाने के लिए उनके पूर्वज्ञान का इस्तेमाल किया जाना चाहिए। बच्चों की बोलचाल में आने वाले अँग्रेज़ी के शब्दों का इस्तेमाल 'डीकोडिंग'[1] सिखाने के लिए किया जाना चाहिए। ऐसी ही एक छोटी कोशिश कक्षा-4 के बच्चों के साथ मैंने की (देखें चित्र-5)। चूँकि बच्चे पहले से अँग्रेज़ी के इन शब्दों के मौखिक रूप से परिचित थे, इसलिए ब्लैकबोर्ड पर इनके लिखित रूप को पहचानने में और फिर उन्हें तोड़कर डीकोडिंग सीखने में उन्हें मदद मिल रही थी, जैसे Kur/kure, Fan/ta, Pep/si.

यदि अब बच्चे इन शब्दों को

[1] *डीकोडिंग पढ़ने का एक कौशल है जिसमें लिखित शब्दों के हिज्जे करके उनका उच्चारण किया जाता है।*

अपनी कॉपी में लिखते हैं, तो यह एक सार्थक गतिविधि होगी।

• गणित

इसी तरह, गणित में यदि बोर्ड पर काम हो रहा है तो इबारती प्रश्नों का ज़्यादा इस्तेमाल हो। मसलन, शिक्षक बोर्ड पर कोई अपूर्ण संक्रिया लिख दें और बच्चे उसके आधार पर सवाल बनाएँ, जिन्हें शिक्षक बोर्ड पर लिख दें। जैसे: 8 - 5 = __

इसके लिए बच्चों से प्रश्न बनाने के लिए कहें। मेरे कक्षा अनुभव के दौरान एक बच्चे द्वारा बनाया गया सवाल –

'एक पेड़ पर 8 चिड़ियाँ बैठी थीं। 5 चिड़ियाँ उड़कर चली गईं, तो अब पेड़ पर कितनी चिड़ियाँ बचीं?"

इसी तरह गुणा, भाग व जोड़ के लिए भी सवाल बनाने और बनवाने की गतिविधि की जा सकती है, जिसे बोर्ड से देखकर कक्षा के बच्चे कॉपी में उतार सकते हैं। इस पर काम होने के बाद, ज़रूरत के अनुसार अभ्यास के लिए कुछ संक्रियाएँ हल करने के लिए दी जा सकती हैं।

अभ्यास में विविधता होनी चाहिए, जिसे हम किताबों में भी तलाश सकते हैं, और मुझे खुशी है कि मैंने एक स्कूल में यह होते हुए देखा।

कक्षा अनुभव - कई शिक्षक अपनी कक्षा में सीखने के अलग-अलग आयामों को जगह देते हैं। चित्र-6 में आप देख सकते हैं कि किस तरह शिक्षिका ने किताब में दिए गए उदाहरण के आधार पर बच्चों को अभ्यास करवाने के लिए सवाल बनाए हैं।

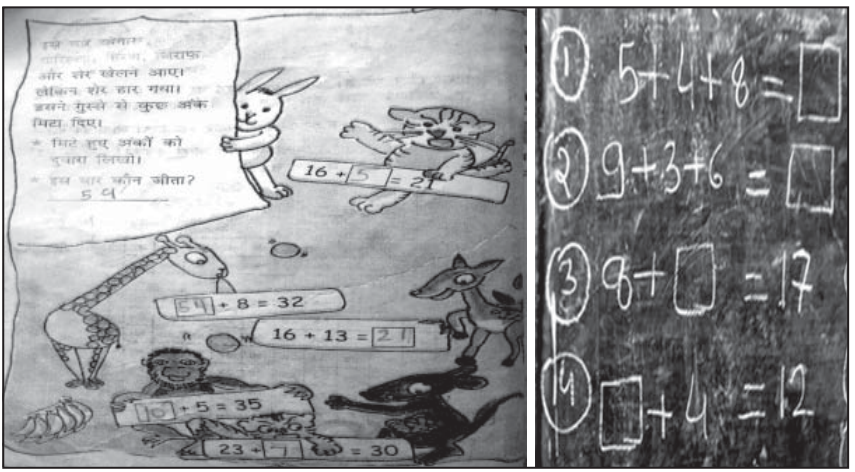

चित्र-6

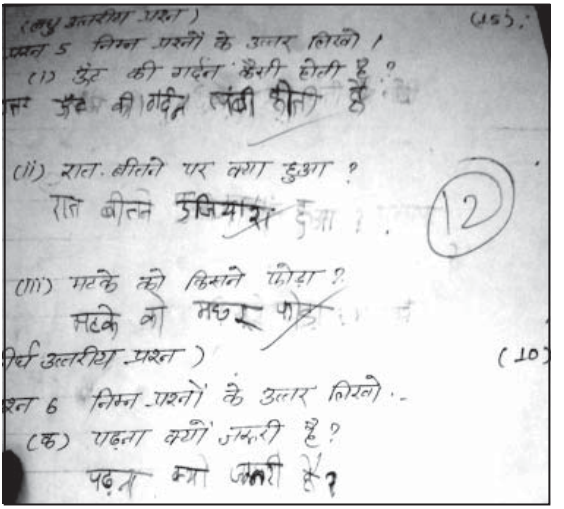

चित्र-7

तरह-तरह के सवालों से आप यह भी जान सकते हैं कि बच्चा कितनी अवधारणा समझ पाया है, जैसे चित्र-6 में बच्चा ये सवाल हल करना सीखा गया है: 16 + 13 = __, 23 + __ = 30. वह बड़ी संख्या से आगे गिनती गिनकर जोड़ की प्रक्रिया कर रहा है परन्तु जोड़ के बाकी आयाम उसे सीखने हैं। इस तरह से सवाल पर चर्चा करने से बच्चे जोड़ करने के अलग-अलग तरीके ईजाद कर सकते हैं जैसे 10 के समूह में जोड़ना 24 + 35 = 20 + 30 + 4 + 5 = 59, संख्या को हिस्सों में तोड़कर जोड़ना जैसे 7 + 7 = 7 + 3 + 4 = 10 + 4 आदि।

* * *

सभी विषयों में, शिक्षा के उद्देश्यों के अनुसार शिक्षण करने में 'कॉपी संस्कृति' काफी बड़ी अड़चन है। कक्षा-2 का एक बच्चा विभिन्न प्रश्नों के उत्तर दे देता है (देखें चित्र-7), परन्तु जब यह पूछा जाता है कि पढ़ना क्यों ज़रूरी है तो उत्तर के लिए दी गई खाली जगह में वही प्रश्न फिर से लिख देता है। हम इन्सान काफी तार्किक होते हैं। किसी भी काम को करने के लिए हमें कारण चाहिए होता है, परन्तु हम बच्चों को कोई तार्किक कारण नहीं देते कि कोई काम उन्हें क्यों करना है। कक्षा-2 के उस बच्चे का यह उत्तर हमें यही सोचने का अवसर दे रहा है।

मीनू पालीवाल: अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन, सागर, म.प्र. में 2017 से 2022 तक काम किया। इससे पहले वे छह वर्ष तक आईसीआईसीआई बैंक में कार्यरत रहीं। मन में आने वाले सवालों के जवाब की तलाश में वे शिक्षा और शिक्षण प्रक्रिया से जुड़ीं। प्राथमिक कक्षा के बच्चों के साथ काम करने में विशेष रुचि।

सभी फोटो: मीनू पालीवाल।

सामाजिक अध्ययन की पुस्तकें एवं नक्शे

प्रकाश कान्त

एकलव्य फाउंडेशन ने सन् 1983 में एक नए शिक्षण कार्यक्रम की शुरुआत की। इस बार जिस विषय पर काम शुरू किया गया था वो पहले से ही बदनाम था – हिस्ट्री-जियोग्रफी बड़ी बेवफा, रात को बाँचा, सुबह को सफा। जी, यह सामाजिक अध्ययन शिक्षण कार्यक्रम था जिसमें यह विषय करके देखने वाली गतिविधियों और विश्लेषणात्मक सामग्री के अभाव में और बोझिल पाठ्यपुस्तकों की वजह से रटने या याद करने का पर्याय बन गया था।

इस कार्यक्रम में नए सिरे से पाठ्यपुस्तक लेखन के साथ-साथ शिक्षक प्रशिक्षण, शालाओं में जाकर शिक्षकों की मदद करना और ओपनबुक एग्ज़ाम की शुरुआत भी की गई। नई पाठ्यपुस्तकों की मुख्य बात थी - जिस टॉपिक या अवधारणा की बात की जा रही है, उसकी एक सरल, साफ और जीवन्त छवि विद्यार्थी के मन में बने। इसी छवि या जीवन्त चित्र के आधार पर विद्यार्थी अवधारणाओं को आत्मसात कर सकते हैं, व्यक्त कर सकते हैं और उन पर सोच-विचार कर सकते हैं। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए पाठ्यपुस्तकों को बोलचाल की भाषा के आसपास रखा गया और टॉपिक की रोचक एवं विस्तृत प्रस्तुति की गई। कहानियों का उपयोग, सार्थक चित्रों-मानचित्रों का भरपूर उपयोग, बीच-बीच में सवाल, अभ्यास एवं गतिविधियों आदि का उपयोग भी किया गया। इसके अलावा शिक्षकों को इन किताबों को पढ़ाने और बच्चों को ज्ञान निर्माण के मौके देने के लिए प्रशिक्षित किया गया।

यह कार्यक्रम मध्यप्रदेश के होशंगाबाद, हरदा और देवास ज़िले के आठ शासकीय माध्यमिक विद्यालयों में शुरू हुआ था। जैसे-जैसे शालाओं के साथ सम्पर्क बढ़ता गया, वैसे-वैसे कार्यक्रम में शैक्षणिक शोध जैसे पहलुओं का विकास भी होता गया। विद्यार्थी सौर मण्डल के बारे में, पृथ्वी की गतियों, रात-दिन के बनने, अक्षांश-देशान्तर को पढ़ने में किस तरह की दिक्कतों का सामना करते हैं, इन्हें करीब से जाना गया। सामाजिक अध्ययन शिक्षण कार्यक्रम इन 8 शालाओं में सन् 2002 तक लागू रहा।

प्रकाश कान्तजी स्वयं इस कार्यक्रम को नेतृत्व देने वाले शिक्षकों में शामिल थे। वे इस नवाचार को अपनी कक्षा में बच्चों तक लेकर गए। इन्हीं अनुभवों का निचोड़ है उनकी किताब – *सामाजिक अध्ययन नवाचार*, बच्चों के साथ-साथ मैंने भी सीखा।

आगामी अंकों में भी हम प्रकाश कान्तजी की इस किताब के कुछ हिस्सों से रूबरू होते रहेंगे।

अभी तक सामाजिक अध्ययन की चाहे जैसी भी किताब रही हो, उसमें नक्शों को बराबर शामिल किया जाता रहा है - विशेषकर, भूगोल एवं इतिहास के खण्डों में। नागरिकशास्त्र के कुछ पाठों में भी नक्शों का उपयोग किया जाता था।

बहुत पहले जब प्रदेश की तीसरी कक्षा में ज़िले का भूगोल पढ़ाया जाता था तब पुस्तक में ज़िले से सम्बन्धित अलग-अलग पाठों में ज़िले के नक्शे दिए जाते थे। इनमें ज़िले की प्रदेश में स्थिति, ज़िले की नदियाँ, पहाड़, मैदान, जंगल, सड़क, रेल लाइन, तहसील, शहर, फसलें, ऐतिहासिक एवं महत्वपूर्ण पर्यटन व सांस्कृतिक स्थल इत्यादि चीज़ें दर्शाई जाती थीं। स्कूलों में आम तौर पर ज़िले के नक्शे उपलब्ध हुआ करते थे जिनका अध्यापन में उपयोग किया जा सकता था। इसी क्रम में चौथी में प्रदेश और पाँचवीं कक्षा में देश का भूगोल पढ़ाया जाता था। इस तरह नक्शों का प्रारम्भिक परिचय बच्चों को प्राथमिक कक्षाओं से ही देने का प्रयास रहता था। इन नक्शों का उपयोग मोटे तौर पर प्राकृतिक, राजनैतिक, आर्थिक जानकारी देने में किया जाता था। इसके अलावा महाद्वीप, महासागरों का सामान्य परिचय करवाने के लिए संसार का नक्शा दिया जाता था।

पुस्तक में ये नक्शे दिए तो जाते थे लेकिन पढ़ने-पढ़ाने में सामान्यतः इनका कोई उपयोग नहीं होता था। कम-से-कम प्राथमिक कक्षाओं में तो नहीं ही! छात्र सामान्य रूप से इतना ही पहचान लें कि कौन-सा नक्शा देश का है और कौन-सा प्रदेश का, तो शायद यह भी गनीमत ही होती थी। वैसे उनके लिए प्रदेश में भी देश और प्रदेश के बाहर भी देश के होने की अवधारणा काफी कठिन होती है। बहरहाल, बच्चे इन नक्शों के बारे में इससे ज़्यादा कुछ नहीं जानते। उन्हें इसकी ज़रूरत भी नहीं होती। उनका काम प्रश्नोत्तर याद भर कर लेने से चल जाता है। कभी नक्शे देखने की ज़रूरत पड़ती नहीं। वे कभी नक्शों को ध्यान से नहीं देखते। बल्कि कहा जाना चाहिए कि बिलकुल ही नहीं देखते। और यह कहना मेरे खयाल से गलत नहीं होगा कि अधिकांश शिक्षक भी इन्हें नहीं देखते। न देखते हैं और न ही पढ़ाने में उनकी मदद लेना

ज़रूरी समझते हैं! बच्चों की ही तरह वे भी इस बात से आश्वस्त होते हैं कि सामाजिक अध्ययन पढ़ना-पढ़ाना नक्शों के बिना सम्भव है।

लगभग यही हालत माध्यमिक कक्षाओं की भी होती है। वहाँ भी नक्शे हर कक्षा के इतिहास व भूगोल के पाठों में पाए जाते हैं। भूगोल में महाद्वीपों के प्राकृतिक एवं राजनैतिक नक्शे। इतिहास में राजाओं, नवाबों या बादशाहों के राज्य के विस्तार के नक्शे। लेकिन उन्हें न तो बच्चे देखते हैं और न ही शिक्षक! ये नक्शे आम तौर पर श्वेत-श्याम होते हैं। जहाँ कहीं रंगीन होते भी हैं वहाँ उनकी छपाई बेहद खराब होती है। रंग और संकेत तालिका का कोई सामंजस्य ही नहीं होता। रंगों के ज़रिए नक्शे को पढ़ पाना ज़्यादातर कठिन ही होता है। और फिर नक्शा अगर प्राकृतिक है तो नदी, पहाड़, पठार, मैदान, रेगिस्तान, झील वगैरह सभी कुछ एक ही नक्शे में दिए होते हैं। ज़ाहिर है, पुस्तकाकार नक्शे में इतनी सारी चीज़ों को पढ़ और समझ पाना मुश्किल होता है। यही बात दीवार पर टाँगे जाने वाले नक्शों के साथ भी होती है।

शायद यह बात थोड़ी कम भरोसे की लगे लेकिन यह हकीकत है कि आम तौर पर स्कूलों में ये नक्शे उपलब्ध होते ही नहीं, और जहाँ कहीं होते भी हैं वहाँ रोल करके सुरक्षित रख दिए जाते हैं। कुछ साल पहले डाइट की एक व्याख्याता के साथ मेरा देवास ज़िले के एक नगरीय हायर सेकेंडरी स्कूल जाना हुआ। उन्हें वैश्विक स्तर पर जनसंख्या के स्थानान्तरण के अपने प्रोजेक्ट के सिलसिले में शिक्षक और बच्चों से चर्चा करनी थी। चर्चा के बीच जब विश्व का नक्शा माँगा गया तो बताया गया कि स्कूल में नक्शे नहीं हैं। यह सुनकर हम लोग हैरान थे। वह उस शहर का काफी बड़ा स्कूल था। छात्र संख्या हज़ार से ऊपर थी। शिक्षक भी पर्याप्त थे। बाकी भौतिक सामग्री भी खूब सारी थी। लेकिन उस हायर सेकेंडरी स्कूल में नक्शे नहीं थे।

जिन थोड़े-बहुत स्कूलों में अगर क्लास में नक्शे टँगे होते भी हैं तो वहाँ वे सिर्फ कक्षा की सजावट का काम कर रहे होते हैं, सुन्दरता बढ़ा रहे होते हैं। पढ़ने-पढ़ाने में उनका कोई उपयोग नहीं किया जाता। शिक्षक पढ़ाते समय उनका इस्तेमाल करना ज़रूरी नहीं समझते। भूगोल पढ़ाने वाले शिक्षक भी! जब भूगोल में यह स्थिति है तो इतिहास के पाठों की बात करना ही बेकार है।

स्कूलीय शिक्षा में नक्शे

आम तौर पर माध्यमिक स्तर की कक्षाओं में नक्शों को लेकर कोई अभ्यास या गतिविधि नहीं होती। पाठ्य-सामग्री, नक्शे और अध्यापन – ये तीनों चीज़ें एक-दूसरे से बिलकुल अलग होते हैं। जहाँ अध्यापन

का अर्थ मात्र परीक्षानुकूल प्रश्नोत्तर लिखवाकर उन्हें रटवाना-भर होता हो, वहाँ तो पाठ्य-सामग्री भी किसी हद तक फालतू हो जाती है। ज़ाहिर है, नक्शे तो और भी ज़्यादा फालतू हो जाते हैं। पढ़ने-पढ़ाने में उनका कोई उपयोग नहीं किया जाता। पाठ के अन्त में दी जाने वाली प्रश्नावली में भी आम तौर पर नक्शे सम्बन्धी प्रश्न नहीं होते। ऐसे में यह कहना कतई गलत नहीं होगा कि माध्यमिक स्तर की सामाजिक अध्ययन की पाठ्यपुस्तकें सिर्फ नक्शों का बोझ ढोती हैं। चूँकि नक्शों की छपाई बेहद खराब होती है इसलिए यह भी नहीं कहा जा सकता कि वे उनमें शोभा बढ़ाने का काम करते हैं!

उच्चतर माध्यमिक स्तर पर ज़रूर परीक्षाओं में नक्शों को अहमियत दी जाती है। परीक्षाओं में आम तौर पर नक्शे से सम्बन्धित एक प्रश्न पूछा जाता है जिसे करना सामान्यतः अनिवार्य होता है। हालाँकि, पिछले तमाम सालों में इस प्रश्न का स्वरूप काफी रूढ़ और इकहरा हो चुका है। उनमें किसी तरह का नवाचार और कल्पनाशीलता दिखाई नहीं देती। इनका कक्षा में पाठ पढ़ाए जाने के दौरान नियमित रूप से अभ्यास भी नहीं करवाया जाता। परीक्षा के ऐन पहले मोटा-मोटा-सा कुछ बता दिया जाता है। नदी, पहाड़, शहर, झील, समुद्र और कुछेक खनिज-फसलों के क्षेत्र। लेकिन यह एक तकलीफदेह हकीकत ही है कि अक्सर इतनी मोटी-मोटी चीज़ें भी बच्चे नक्शे में ठीक-से नहीं बता पाते। सामान्यतः नक्शे का प्रश्न इसीलिए हल किया जाता है क्योंकि ये अनिवार्य होता है। अगर यह प्रश्न ऐच्छिक हो तो सम्भवतः बहुत कम बच्चे ही इसे हल करना चाहें। ऐसे में सवाल उठ सकता है कि आखिर सामाजिक अध्ययन की निर्धारित पुस्तकों में नक्शों की अहमियत क्या है? वे वहाँ दिए ही क्यों जाते हैं!

जहाँ तक इतिहास में दिए जाने वाले नक्शों की बात है, वे ज़्यादातर राजाओं-बादशाहों के राज्य के विस्तार, पुराने शहरों की स्थिति इत्यादि बताने के लिए दिए जाते हैं। कुछ में पुराने और ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थलों को दर्शाया जाता है। इन नक्शों को अगर ठीक-से सन्दर्भ और सहायक सामग्री की तरह इस्तेमाल किया जाए तो इतिहास की घटनाओं की भौगोलिकता को समझने में आसानी हो सकती है। लेकिन इतिहास के नक्शे वाले पृष्ठ तो भूगोल से भी ज़्यादा बिना देखे-पढ़े रह जाते हैं। सम्बन्धित पाठ्य-सामग्री पर चर्चा करते वक्त उन्हें कभी देखा, दिखाया और बताया नहीं जाता। अगर पानीपत के मैदान में तीन-तीन युद्ध हुए थे तो वह मैदान भारत के नक्शे में आखिर कहाँ था, यह कभी बताया नहीं जाता। या अगर वास्को डी गामा पुर्तगाल से भारत आया था

चित्र-1: *कक्षा सातवीं के इतिहास खण्ड का 'कक्षा-6 में तुमने जाना था' का एक पन्ना। इस मानचित्र में राजा अशोक के समय में मगध राज्य की सीमा दिखाई गई है। जनपदों के अलावा और भी कई इलाके मगध राज्य में आ गए थे।*

तो किस रास्ते से आया था! या फिर मोहम्मद तुगलक ने दिल्ली की जगह जिस दौलताबाद को अपनी राजधानी बनाने का असफल प्रयास किया था, वह दक्षिण भारत में किस जगह स्थित है। यह सब कभी नहीं दिखाया जाता!

नागरिकशास्त्र और कृषि के पाठों की तो और भी बुरी हालत होती है। हालाँकि, उनमें नक्शे अमूमन कम होते हैं। फिर भी निर्वाचन क्षेत्र या फसलों के उत्पादन क्षेत्र, जनसंख्या के वितरण इत्यादि को दर्शाने वाले नक्शे दिए जाते हैं! लेकिन इन नक्शों का भी कभी उपयोग नहीं होता। वे पुस्तक के पन्नों की संख्या और इस तरह सिर्फ बोझ बढ़ाने का काम करते हैं, इस तथ्य के बावजूद कि नक्शे सामाजिक अध्ययन पढ़ने-पढ़ाने का सबसे ज़रूरी और प्रभावशाली माध्यम होते हैं। प्रशिक्षण संस्थाओं में ज़रूर बताया जाता है कि शिक्षक पढ़ाते वक्त नक्शों का उपयोग करें लेकिन प्रशिक्षणों में बताई जाने वाली अन्य बहुत सारी बातों की तरह इस नसीहत पर भी आम तौर पर अमल नहीं किया जाता। बच्चा बिना नक्शा देखे ही अपनी माध्यमिक स्तर की पढ़ाई पूरी कर लेता है। वह कभी समझ नहीं पाता कि चीज़ों को जिस तरह से उसे देखना-समझना था, उस तरह से सब नहीं कर पाने से उसका क्या और कैसा नुकसान हुआ! यह सिर्फ सरकारी स्कूल के बच्चों के साथ हो, ऐसा नहीं है। निजी स्कूलों के बच्चों के साथ भी यही होता है। क्योंकि यूँ भी उनका सारा ज़ोर सिर्फ कथित तौर पर अच्छे-से-अच्छे रिज़ल्ट निकालने पर हुआ करता है।

बच्चे और दिशाएँ

नक्शा देखते-दिखाते और नक्शे के ज़रिए पाठ समझाते समय एक खास दिक्कत आती है, बच्चों को सही दिशाबोध करवाने की, भले ही

दिशाएँ नक्शे में दी हुई हों। ऊपर उत्तर, नीचे दक्षिण! दाएँ हाथ की तरफ पूर्व और बाएँ पश्चिम। प्राथमिक रूप से मददगार होते हुए भी यह एक तरह से बहुत स्थूल किस्म का दिशा दर्शन होता है। ऊपर-नीचे का तो ठीक लेकिन दाएँ-बाएँ या दाहिने-बाएँ में गफलत होती रहती है। खासकर शुरुआती कक्षाओं में। तब 'जीमना-डाँवा' जैसे स्थानीय शब्दों की मदद लेनी पड़ती है। 'जीमना' यानी जिस हाथ से जीमते या खाना खाते हैं और डाँवा यानी जिससे नहीं जीमते! या फिर सीधा-उल्टा। लेकिन किताबों में आम तौर पर ये शब्द नहीं होते। वहाँ मानक या पारिभाषिक शब्द दिए होते हैं। उस स्थिति में शिक्षक पर निर्भर करता है कि वह ठीक-से समझ बनाने के लिए स्थानीय भाषा का सहारा ले! ऐसे में उन शिक्षकों को सुविधा होती है जो उसी अंचल-विशेष के हों या कम-से-कम वहाँ की स्थानीय भाषा से परिचित हों क्योंकि प्रत्येक स्थानीय भाषा की भी कुछ विशेषताएँ होती हैं जिनसे परिचित होने से संवाद एवं सम्प्रेषण बेहतर हो पाता है। मसलन, मानक हिन्दी में 'मोटे' का सामान्य तौर पर अर्थ होता है स्थूल! जबकि मालवी में उसका अर्थ होता है, बड़ा। गुजराती में भी बड़ा ही होता है। मोटा भाई, मतलब बड़ा भाई!

बहरहाल, अपने गाँव के मिडिल स्कूल की छठीं कक्षा में भूगोल पढ़ाते समय मेरे सामने यही दिक्कत आई। जैसा कि पहले ज़िक्र किया था, मानकुण्ड स्कूल में मानकुण्ड के अलावा आसपास के घट्या गया-सुर, पोनासा, मानकुण्डी, अन-खेली, मुरादपुर जैसे कई गाँवों के बच्चे भी पढ़ने आते थे। इसकी वजह यह थी कि उनके गाँवों में

इस लेख के साथ एक और कागज़ पर एक नक्शा बना था। नक्शे में हासिलपुर का नाम था। दूसरे गाँव बने ज़रूर थे, मगर उनके नाम नहीं थे।

तुम तीर बनाकर बताओ, दौलत किस रास्ते से गया होगा?

चित्र-2: *कक्षा छठीं के भूगोल खण्ड के पाठ 'दिशाएँ' का एक पन्ना।*

उन दिनों मिडिल स्कूल की सुविधा उपलब्ध नहीं थी। इसके अलावा उन गाँवों के प्राथमिक स्कूलों में से कुछ स्कूल एक-शिक्षकीय भी थे। ज़ाहिर है, उन अलग-अलग स्कूलों से पढ़कर आने वाले बच्चों का शैक्षणिक स्तर एक-जैसा नहीं था। गणित, विज्ञान, भाषा की तरह भूगोल वगैरह का भी। ऐसा होना स्वाभाविक भी था। किसी स्कूल की किसी भी कक्षा के सभी छात्रों का शैक्षणिक स्तर कभी एक-जैसा नहीं हो सकता। हालाँकि, कक्षावार स्तरीकरण में ऐसा मान लिया जाता है।

खैर, मोटे तौर पर प्राथमिक स्तर पर बच्चों की जानकारी महाद्वीप, महासागर, नदी, पहाड़, पठार, मौसम, ग्रहण, सौर-मण्डल इत्यादि तक सीमित हुआ करती है। इसके अलावा, देश-प्रदेश की कुछ मोटी-मोटी जानकारियाँ भी होती हैं। वैसे अलग-अलग स्कूलों से आने वाले छात्रों के पास इस तरह की जानकारियाँ भी एक-जैसे स्तर की नहीं होतीं। मेरे स्कूल में आए छात्रों के साथ भी यही बात थी।

सो, भूगोल पढ़ाते वक्त यह दिक्कत रही। वैसे इस पर ध्यान थोड़ा बाद में जा पाया। आम तौर पर यही होता है। कई बार शिक्षक सहज भाव से जिन चीज़ों को आसान समझता है, वे बच्चों के लिए काफी मुश्किल हुआ करती हैं। बच्चों की व्यावहारिक समस्याओं पर शिक्षक का ध्यान देर से ही जा पाता है। कई बार तो काफी देर हो जाने के बाद! मेरे मामले में भी देर तो हुई लेकिन गनीमत रही कि बहुत ज़्यादा नहीं। मैंने देखा कि बच्चे मोटे तौर पर तो दिशाएँ पढ़ और पहचान लेते हैं लेकिन नक्शों के बहुत भीतर जाने पर गड़बड़ करते हैं। और गड़बड़ तो वे दूसरी चीज़ों को लेकर भी करते हैं।

असहज करने वाले सवाल

वे पिछली कक्षाओं में बार-बार सुने-पढ़ाए मुताबिक इतना तो जानते हैं कि पृथ्वी गोल है। दूसरे ग्रह-नक्षत्रों की तरह! बाकी ग्रह-नक्षत्रों के गोल होने या गोल बताए जाने से उन्हें समस्या नहीं होती क्योंकि वे देख पाते हैं कि चाँद-सूरज गोल बताए भी जाते हैं और गोल दिखाई भी देते हैं। लेकिन पृथ्वी को भी गोल बताए जाने पर उन्हें थोड़ी-सी दिक्कत होती है। अगर गोल है तो वैसी दिखाई क्यों नहीं देती! दिखाई तो वह समतल ही देती है। फिर?

यह 'फिर' पड़ोस के गाँव से रोज़ तीन किलोमीटर पैदल चलकर आने-जाने वाले देवकरण का था जिसके पिता खेत मज़दूर थे। उसका सवाल वाजिब था। जब कोई चीज़ सपाट-समतल दिखाई देती है तो फिर वह गोल कैसे हुई? मेरे लिए उसके सवाल से खुद का तालमेल बिठाना थोड़ा मुश्किल रहा। वाजिब होने के

बावजूद पूछी गई बात के अभिप्राय को एकदम से समझने में थोड़ी-सी उलझन हुई। दरअसल, शिक्षक या ज़्यादातर बड़ों के साथ यह समस्या हुआ करती है कि तयशुदा अवधारणा या अपने भीतर स्थाई हो चुके कथित ज्ञान पर अचानक सवालिया निशान लगाया जाना, उन्हें भीतर से थोड़ा-सा असहज कर देता है। हमें लगता है कि जैसा हम मानते, सोचते और बच्चों से कहते हैं, सब कुछ वैसा ही है। प्रश्नातीत। उस पर सवाल-जवाब कैसा!

बहरहाल, देवकरण के सवाल से पैदा हुई असहजता से बाहर आने में मुझे थोड़ी देर लगी थी। जवाब में, मैंने पृथ्वी के गोल होने के तथ्य को समझाने के लिए वे सब सर्वप्रचलित उदाहरण और तर्क दिए थे, जिन्हें अपनी पढ़ाई के दिनों से सुनता-पढ़ता आ रहा था। अपनी बात खत्म करने के बाद मैंने उसका चेहरा देखा था जिस पर अब सवाल तो नहीं था या सवाल की स्याही तो उड़ गई थी पर लकीरों जैसा कुछ बाकी था और पूरी तरह न समझ पाने के संकेत भी। मैं एक तरह से असहाय था। मुझे लगता है, एक शिक्षक को अपने काम के बीच अक्सर ऐसी असहायताओं का सामना करना पड़ता है। कई बार उसे लगता है कि सारी कोशिशों के बाद भी बात बच्चे तक सही तरह से पहुँच नहीं पा रही है। कभी-कभी बच्चे की जिज्ञासा और शिक्षक के कथित ज्ञान के बीच एक ऐसी अनदेखी खाई होती है जो अमूमन न तो पाटी जा पाती है और न लाँघी! और ऐसे में छात्र एवं शिक्षक खाई के इस-उस तरफ छूटे रह जाते हैं।

टँगा नक्शा और पानी बहाव

बहरहाल, जैसा अभी ज़िक्र किया, बिलकुल शुरू में तो नहीं लेकिन कुछ दिन बाद ध्यान गया कि सिर्फ दिशा ही नहीं, नक्शे को लेकर भी बच्चों की अपनी कुछ मुश्किलें हैं। चाहे नक्शा दीवार पर टँगा हो या किताब में छपे होने से गोद में रखा हो या फिर हाथ में लिया हुआ हो, उन्हें यही लगता है कि वे उसे सामने से देख रहे हैं। ऐसे में वे उत्तर-दक्षिण दिशा को हमेशा ऊपर-नीचे की तरह समझते रहते हैं। ऊपर उत्तर, नीचे दक्षिण! इस सूरत में समस्या तब होती है जब कोई नदी दक्षिण से उत्तर, मसलन, चम्बल या सोन, बहती बताई जाती है। अपने सामान्य ज्ञान के चलते उनके लिए यह समझ पाना मुश्किल होता है कि कोई नदी भला नीचे से ऊपर कैसे बह सकती है! क्योंकि पानी तो ऊपर से नीचे यानी ढाल की तरफ बहता है। यह समझते-कहते हुए वे अपने देखे-जाने स्वानुभूत और एक तरह से सिद्ध ज्ञान को ही बतौर तर्क इस्तेमाल करते हैं। उनके लिए नक्शे का 'ऊपर-नीचे' और धरती का 'ऊपर-नीचे' एक ही होता है। कभी-कभी सरलीकृत सूचना या

जानकारी किस तरह की मुश्किल पैदा कर देती है, यह उसी की एक मिसाल हो सकती है। बेशक, इस तथ्य को समझ पाना उनके लिए तब भी आसान नहीं होता कि नक्शे हमेशा इस तरह से बनाए जाते हैं मानो पृथ्वी या पृथ्वी के किसी खास हिस्से को ऊपर से देखा जा रहा हो! जब देखे जाने का कोण बदल जाता है तब ऊपर-नीचे की अवधारणा भी गड़बड़ा जाती है। अब तक जिसे उत्तर-दक्षिण देखा-कहा जा रहा होता है, वह वैसा नहीं रह जाता। तब लगा था कि बच्चों को नक्शा सबसे पहले दीवार पर टाँगकर नहीं बल्कि ज़मीन पर फैलाकर बताया जाना चाहिए। उन्हें खड़ा करके, ऊपर से! कुछ दिन इस तरह के अभ्यास के बाद उनकी यह समझ बन सकती है कि दीवार पर टँगे नक्शे में दिखाई गई जगह असल में ऊपर से देखी जा रही है, सामने से नहीं!

इस पूरी मशक्कत में मेरी समझ यह बनी कि जिस नक्शे को देखने-पढ़ने में हम शिक्षक या बड़े व्यक्ति सामान्यतः कोई कठिनाई नहीं अनुभव करते, बच्चों के लिए असल में वह कितनी मुश्किल चीज़ होती है! हम परीक्षाओं में कितनी आसानी-से उनसे किसी खाके में कोई नदी, मैदान, पहाड़ या पठार अंकित करने को कह देते हैं। एक ही समतल कागज़ पर प्रकृति की इतनी उलझी हुई संरचनाएँ। पहाड़ भी, मैदान भी! नदी और झील भी! उसी पर दिशाएँ भी! ऊपर-नीचे मतलब उत्तर-दक्षिण का झमेला भी! ऐसे में बच्चे अगर भ्रमित हो जाते हैं, समझ की भूल-भुलैया में भटक जाते हैं तो यह स्वाभाविक ही है। लेकिन सामाजिक अध्ययन जैसा विषय नक्शों के बिना पढ़ाया भी नहीं जा सकता।

मूर्त संसाधनों का इस्तेमाल

यूँ तो समतल कागज़ पर बनी टेबल, कुर्सी, अलमारी वगैरह जैसी तमाम त्रिआयामी चीज़ें बच्चे आसानी-से देख-समझ लेते हैं। उनके दूर या पास होने का एहसास भी उन्हें हो जाता है। लेकिन नक्शों में दिखाई चीज़ों के साथ इतनी आसानी नहीं रहती। प्लास्टिक के त्रिआयामी नक्शे ही इसमें थोड़ी-बहुत मदद कर पाते हैं। खासकर धरातल की संरचना समझने में। लेकिन इन नक्शों के साथ एक आम समस्या यह है कि बेहद महँगे होने से वे सारे बच्चों को मुहैया नहीं करवाए जा सकते। दूसरे, छोटे स्कूलों के लिए उन्हें अपेक्षित संख्या में खरीद पाना आसान नहीं होता। खासकर उनके फुल साइज़ होने की वजह से। और फिर उनको दीवार पर टाँगने से धरातल की संरचनाओं का आकार-प्रकार अलग तरह का दिखाई देता है। बच्चे इससे फिर भ्रमित होते हैं। असल में, इन नक्शों को तो नीचे रखकर ही देखना ज़रूरी होता है।

मैं इतना समझ चुका था कि छठीं क्लास में बच्चे नक्शे के बारे में अगर एक बार सब कुछ ठीक-से जान-समझ गए तो उनके लिए अगली कक्षाओं में सामाजिक अध्ययन पढ़ने में नक्शों का इस्तेमाल करना आसान और उपयोगी हो जाएगा। यह सोचकर मैंने स्कूल के लिए भारत के छोटे आकार के त्रिआयामी नक्शे का इन्तज़ाम किया। दूर से देखने-दिखाने से तो उस नक्शे में कुछ समझ में आ नहीं सकता था, सो उसे बच्चों के समूहों को बारी-बारी से दिया गया। इसका अच्छा नतीजा निकला। बच्चों ने नक्शे में दी संरचनाओं को नज़दीक से देखकर, अपनी उँगली फेरकर देखा-समझा। इससे उनके लिए समतल कागज़ पर बने नक्शे में अंकित भू संरचनाओं को समझना थोड़ा-सा आसान हो गया। बाकी, नक्शों में दिए जाने वाले नदी, पहाड़, पठार, मैदान को 'देखना' उनके लिए ज़्यादा मुश्किल नहीं रहा।

अब फिर से नक्शे में दिशा-ज्ञान पर लौटते हैं। नक्शों के ऊपर-नीचे, दाएँ-बाएँ किनारों पर प्रदर्शित उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम ने बच्चों में यह भ्रम पैदा कर दिया कि ये चारों दिशाएँ सिर्फ नक्शों के किनारों पर ही होती हैं। जो भी दिशा है, नक्शे में वह बस किनारे पर ही है। ऐसे में जो बीच में है, उसकी दिशा तय करना उनके लिए मुश्किल होता था। उनके लिए यह समझ पाना भी कठिन होता था कि दिशा सिर्फ किनारों पर ही नहीं होती बल्कि हर चीज़ के ठीक पास से शुरू होती है। और ऐसे में दिशा एक तरह से सापेक्ष स्थिति होती है। ज़रूरी नहीं कि एक लाइन में खड़े सलीम के लिए जो उत्तर में हो, वह सुदेश के भी उत्तर में हो! दक्षिण भी हो सकता है और एक पंक्ति में बैठे मोहन के पूर्व में क्रम से बैठे सुधा, नर्मदा, बोंदर में से सभी एक-दूसरे के पूर्व में ही बैठे हों, यह ज़रूरी नहीं, वे पश्चिम में भी बैठे हो सकते हैं। बल्कि होते ही हैं। इस मामले में छठीं कक्षा के भूगोल खण्ड में दिया दिशाओं का अभ्यास काफी उपयोगी रहा। इसके ज़रिए यह समझ बना पाया कि नक्शे में हम जिस बिन्दु पर स्थिर होकर उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम होने की बात करते हैं, वह उस बिन्दु की सापेक्ष स्थिति है। ज़रूरी नहीं कि दूसरे बिन्दु से भी वे स्थान उसी दिशा में हों!

असल में, बिना नक्शा दिखाए किसी जगह की दिशा बच्चों को रटा देने से होता यह है कि जब उन्हें उस जगह को नक्शे में ढूँढना होता है, वे आसानी-से यह नहीं कर पाते। मूल बात फिर वही कि प्राथमिक कक्षाओं में नक्शों में जिस तरह दिशाबोध करवाया जाना चाहिए, वह करवाया नहीं जाता। अगर वैसा किया जाता तो बड़ी कक्षाओं में नक्शे देखने-पढ़ने में न सिर्फ आसानी होती बल्कि उसकी समझ और गहरी भी होती

जाती। बहरहाल, छठीं कक्षा का दिशाओं वाला अभ्यास काफी उपयोगी रहा। उसकी मदद से अगले कुछ काम भी आसान हुए।

नक्शे और पैमाने

दिशाओं की ही तरह बच्चों को नक्शे और पैमाने का अन्तर्सम्बन्ध समझाना थोड़ा-सा कठिन था। वे यह बात मुश्किल से समझ पाए थे कि बिना पैमाने का नक्शा मात्र एक चित्र होगा, मानचित्र नहीं! पैमाने की अवधारणा, उसका निर्धारण इत्यादि समझाने के लिए छठीं के भूगोल खण्ड का पाठ 'आओ मानचित्र बनाएँ' काफी रोचक और बच्चों में सक्रियता पैदा करने वाला था। उस पाठ में बच्चों से अपनी कक्षा के कमरे की लम्बाई-चौड़ाई स्केल की मदद से नपवाकर माचिस की तीलियों की मदद से नक्शा बनवाया गया था। यह काफी दिलचस्प गतिविधि थी। मेरी क्लास के बच्चों ने भी अलग-अलग समूहों में क्लास की लम्बाई-चौड़ाई स्केल से नापी और नाप को कॉपियों में नोट कर लिया। दो लड़कों ने नापने और दो ने नोट करने का काम किया। हर समूह पिछले दिन दिए निर्देश के अनुसार माचिस घर से ले ही आया था। अब क्लास का नक्शा बनना था। पाठ में बनाए गए मानचित्र की ही तरह तय किया गया कि माचिस की एक तीली को एक स्केल के बराबर मानकर हर समूह नक्शा बनाएगा। अगर कमरे की लम्बाई 15 फीट है तो 15 तीलियाँ और चौड़ाई 10 फीट है तो 10 तीलियाँ रखी जानी हैं। लेकिन इसमें एक दिक्कत भी थी। कक्षा बड़ी थी। करीब 70 बच्चों की। इनमें बच्चियाँ ही 25 के आसपास थीं। सो, समूह भी तकरीबन 16-17 बने थे। ज़ाहिर है, इतने समूहों के मानचित्र कक्षा के फर्श पर नहीं बन सकते थे। इसके लिए सारे समूहों को स्कूल के मैदान में ले जाना पड़ा। स्कूल का मैदान बड़ा था। लेकिन कभी खेत की ज़मीन रहे होने से उतना समतल नहीं था कि उस पर तीलियों की मदद से नक्शा बनाया जा सके। एक और मुश्किल थी कि हवा तेज़ चल रही थी जिससे तीलियाँ अपनी जगह से हिल जाती थीं। इसके बावजूद जैसे-तैसे और काफी कुछ ठीक-ठाक नक्शे बन गए। हर समूह अपने नक्शे को देखकर खुश था। वह मोटे तौर पर इतना जान गया था कि किसी निश्चित आधार पर बड़ी चीज़ को छोटा करके कैसे बनाया जा सकता है!

कक्षा में लौटकर बच्चों से उनके इस अनुभव पर थोड़ी बात की। अगली और असली चीज़ इसके बाद की जानी थी। उनसे ही पता किया कि अगर एक तीली की जगह एक सेंटीमीटर की लाइन खींचें और नक्शा पेंसिल-स्केल की मदद से कागज़ पर बनाएँ तो! इस 'तो' को सुनकर कई बच्चों के चेहरे पर चमक

अभ्यास के प्रश्न

1. यहां दो चित्र बने हैं। इनमें से एक चित्र का नक्शा भी बना हुआ है। चित्रों और नक्शे का मिलान करके बताओ कि नक्शा चित्र अ का है या चित्र ब का। मिलान करने के लिए चिन्हों की सूची ध्यान से देख लो।

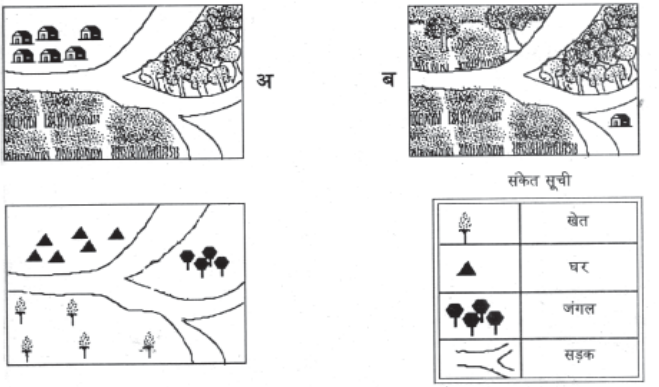

2 क) मोनू ने अपने चौक का नक्शा बनाया। उसका चौक पूर्व से पश्चिम 2 स्केल और उत्तर से दक्षिण 3 स्केल था। मोनू के एक स्केल को माचिस की एक तीली के बराबर मानो। अब बताओ नीचे दिए नक्शों में से कौन-सा नक्शा मोनू के चौक का है?

ख) अगर हम एक स्केल को दो तीली के बराबर मानें तो चौक कितना बड़ा बनेगा? अपनी कापी में बनाओ।

3. इस पुस्तक के पृष्ठ ७७ पर मध्यप्रदेश का नक्शा है। नक्शा देखकर बताओ कि –

- इंदौर भोपाल की किस दिशा में है?
- जबलपुर भोपाल की किस दिशा में है?
- जबलपुर इंदौर की किस दिशा में है?
- हरदा के पूर्व में पड़ने वाले दो शहरों के नाम क्या हैं?

(तुम दिशा तीर की मदद ले सकते हो)

चित्र-3: *कक्षा छठीं के भूगोल खण्ड के पाठ 'आओ बनाएँ मानचित्र' का एक पन्ना।*

जैसी आ गई। और फिर उन्होंने मेरे बताए अनुसार बड़े कागज़ पर अपनी कक्षा के कमरे का मानचित्र बना डाला। अभी उसमें दरवाज़ा, खिड़की, ब्लैक बोर्ड बनाए जाने थे। इनके लिए उपयोग में आने वाले चिह्नों की चर्चा इसी पाठ में थी। उन्हीं चिह्नों का उपयोग कर उन्होंने अपना-अपना कमरा पूरा कर लिया। हालाँकि, इसमें कुछ बच्चों से एक गड़बड़ हो गई। कमरा कायदे से पूर्व-पश्चिम लम्बाई का बनना चाहिए था। जबकि उन्होंने उत्तर-दक्षिण बना दिया। पिछले पाठ में किए दिशाओं के अभ्यास से बाद में उन्होंने अपनी इस गलती से निपटना भी सीख लिया।

बच्चों को पैमाने के आधार पर नक्शा पढ़ना और बनाना आ जाने के बाद, मेरे लिए बच्चों से एक और गतिविधि करवाने की गुंजाइश निकल

आई। पहले मैंने उनसे अपनी किताब में दिए सारे नक्शों में दिए पैमानों को पढ़ने को कहा। उनकी पुस्तक में भारत के अधिकांश नक्शे 1 सेंटीमीटर बराबर 200 किलोमीटर के पैमाने के आधार पर बने थे। मतलब नक्शे पर की 1 सेंटीमीटर की दूरी ज़मीन पर की वास्तविक 200 किलोमीटर की दूरी होगी – यह उन्हें स्पष्ट कर दिया गया। इसके बाद उन्हें नक्शे में दिए अलग-अलग स्थानों के बीच की वास्तविक दूरी पैमाने के आधार पर पता करने को कहा। हालाँकि, सड़क या रेल मार्ग से ये दूरियाँ वास्तविक दूरी से अलग हो सकती थीं। बल्कि थी हीं। इसके बावजूद यह एक अच्छी गतिविधि थी। बच्चों ने इसमें काफी रुचि ली। बल्कि उन्हें मज़ा भी आया। किताब के नक्शों के अलावा उन्होंने एटलस के नक्शों में दिए पैमानों को भी पढ़ने की कोशिश की। अगली कक्षाओं में उन्होंने किताबों में दिए नक्शों को पैमानों के अनुसार पढ़ने का प्रयास किया और अपने इस प्रयास में कई हद तक सफल भी रहे।

पैमाने पढ़ने की दक्षता बढ़ाने के लिए मैंने बार-बार पैमाने सम्बन्धी गतिविधि तो करवाई ही, इसके अलावा मासिक टेस्ट, तिमाही, छमाही और वार्षिक परीक्षाओं में पैमाने सम्बन्धी प्रश्न कई तरह से पूछे – जितनी ज़्यादा तरह से पूछे जा सकते थे, उतनी तरह से। इसके अतिरिक्त अलग-अलग नाप और पैमाने देकर उनसे अलग-अलग तरह के कमरों के मानचित्र बनवाए। दो दरवाज़े वाले, आमने-सामने दरवाज़े वाले, उत्तर-दक्षिण लम्बाई वाले, पूर्व-पश्चिम लम्बाई वाले! चिह्न या संकेतों सहित! इस सबका लाभ भी हुआ। बच्चे न सिर्फ मानचित्र पढ़ना बल्कि बनाना भी काफी-कुछ सीख गए। ज़ाहिर है, यह उनकी एक खास तरह की उपलब्धि तो थी ही, साथ ही उनकी बुनियादी दक्षता का विस्तार भी था। आखिर, शिक्षा का एक उद्देश्य बच्चे में अलग-अलग तरह की दक्षता पैदा करना और उनका विस्तार करना भी है।

प्रकाश कान्त: हिन्दी से एम.ए. और रांगेय राघव के उपन्यासों पर पीएच.डी. की है। शीर्ष पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ एवं आलेख प्रकाशित। चार उपन्यास – *अब और नहीं, मक्तल, अधूरे सूर्यों के सत्य, ये दाग-दाग उजाला*; कार्ल मार्क्स के जीवन एवं विचारों पर एक पुस्तक; तीन कहानी संग्रह – *शहर की आखिरी चिड़िया, टोकनी भर दुनिया, अपने हिस्से का आकाश*, संस्मरण – *एक शहर देवास, कवि नईम और मैं*, और फिल्म पर एक पुस्तक – *हिंदी सिनेमा: सार्थकता की तलाश* प्रकाशित हो चुकी हैं। लगभग 30 वर्षों तक ग्रामीण शालाओं में अध्यापन।

सभी चित्र: *एकलव्य* द्वारा विकसित व म.प्र. पाठ्यपुस्तक निगम द्वारा प्रकाशित सामाजिक अध्ययन पाठ्यपुस्तक, कक्षा 6 व 7 से साभार।

यह लेख *एकलव्य* द्वारा प्रकाशित पुस्तक *सामाजिक अध्ययन नवाचार* से साभार।

जामलो चलती गई

रुबीना खान

समीना मिश्रा द्वारा लिखित, तारिक अज़ीज़ के चित्रांकन द्वारा तैयार व *एकलव्य* द्वारा प्रकाशित किताब *जामलो चलती गई* से मेरा जुड़ाव काफी वक्त पहले से ही बन गया था। खासकर, इसका मुख्य-पृष्ठ मुझे छोटी-सी जामलो में उन तमाम हाशियाकृत आदिवासी समुदाय के बच्चों की झलक दिखा गया जिनके साथ काम के मार्फत मेरे रिश्ते बने हैं। कोविड महामारी में, लॉकडाउन के दौरान प्रवासी मज़दूरों की त्रासदी और सफर को बयान करती हुई सच्ची घटना पर आधारित इस कहानी की मुख्य पात्र 12 वर्ष की प्रवासी मज़दूर जामलो है जो बस्तर के मुड़िया आदिवासी समुदाय से है। इस जीवन्त किस्से को इसके अल्फाज़ तो बेशक मज़बूती और संवेदनशीलता से अपनी बात बयान करते ही हैं, वहीं इसका चित्रांकन भी उतनी ही संजीदगी के साथ इससे जुड़ाव महसूस कराता है। कहानी के चित्र कुछ इस तरह बनाए गए हैं जैसे जामलो का हौंसला और मुश्किलों से भरा सफर आँखों के सामने हकीकत के रास्ते से होते हुए गुज़र रहा हो। ऐसी ही कई वजहों से यह किताब मेरी पसन्दीदा किताबों की फेहरिस्त में आ गई।

शब्दों और चित्रों में अन्तर्सम्बन्ध

इस किताब को मैंने इसके चित्रों के माध्यम से जानने का प्रयास किया। किताब के मुख्य पृष्ठ से ही शब्दों और चित्रों के बीच के जुड़ाव को चित्रकार ने बखूबी उकेरा है। लॉकडाउन के दौरान उच्च वर्ग व निचले तबके के लोगों की ज़िन्दगी के फर्क को शब्दों के साथ ही चित्रों

में भी बेहतरी से दिखाया गया है। जहाँ महामारी के दौरान विशेष वर्ग के बच्चों के जीवन की सुविधाओं को दर्शाया गया है, वहीं दूसरी ओर जामलो जैसी प्रवासी मज़दूर बच्ची को पानी और खाने की तड़प के साथ धूप में तन्हा लम्बे रास्ते पर चलते देखा जा सकता है। साथ ही, उसके कन्धे पर मेहनत से कमाई मिर्चों का बोझ भी उसके साथ-साथ चल रहा है।

यह दिलचस्प बात है कि इन सबके बावजूद जामलो उस मैना की भूख को भी महसूस कर पा रही थी जो उसे रास्ते में मिली। इस वक्त जामलो के पास उसकी मिर्च का थैला ही खज़ाना मात्र था जिसे वह मैना के साथ बाँट रही थी और साथ ही, अपने तोते को भी याद कर रही थी।

आगे बढ़ते हैं तो कहानी की बेहद दुखद घड़ी सामने आ जाती है जब जामलो का तकलीफदेह सफर खत्म हो जाता है। दूर कहीं उसके माँ-बापू का उसके लिए इन्तज़ार और मुश्किल हालातों से जूझते लोगों की चलती हुई भीड़, यह सब कुछ उस हकीकत को बयाँ कर रहा था जिसमें लोगों ने बहुत कुछ खोया था। अगर उस कठिन वक्त में भी उनके पास कुछ था तो सिर्फ उनका हौंसला और उम्मीद। कहने को महज़ कलाकार

की कलाकारी है लेकिन मैं हर चित्र के साथ एक पाठक के रूप में खुद को उन हालातों में महसूस कर पा रही थी। इस किताब को कुछ इस तरह से तैयार किया गया है कि इसका हर एक चित्र बोलता प्रतीत होता है। जो पढ़ने की मुश्किल से जूझ रहा हो, ऐसा पाठक भी महज़ चित्रों के ज़रिए कहानी से उतनी ही गहराई से जुड़ पाएगा।

चित्रांकन में रंगों का प्रयोग

इस कहानी में चित्रकार ने आला दर्ज़े के रंगों का इस्तेमाल किया है जिसकी शुरुआत किताब के मुख्य-पृष्ठ से ही हो जाती है। नीले आसमान में सफेद बादल बेशक मौसम को साफ बता रहे हैं, पर दूसरी ओर ज़मीन पर गहरे नीले रंग में बेबस प्रवासी मज़दूरों की भीड़ को भी नज़रअन्दाज़ नहीं किया जा सकता। इन सबके बीच पेड़ों से गिरी कुछ पीली सूखी पत्तियाँ इस तरह दिख रही हैं मानो किसी तरह की वीरानगी इनके साथ चल रही हो। इस दौरान जामलो के झोले से गिरी कुछ सुर्ख लाल मिर्चें भी उसके सफर की रफ्तार को बयाँ कर रही हैं। वहीं करीब पड़ा अखबार लॉकडाउन जैसे भयावह दौर को प्रदर्शित कर रहा है। सुनसान रास्ते से गुज़रती छोटी जामलो के माथे को धूप की तपिश छू रही है। इस तपिश को उजले पीले रंग से दिखाया गया है। धूप ही धूप और हरे रंग की ठण्डक, छाया नाम मात्र को ही दिखाई दे रही है। दबे रंग से जामलो का चेहरा, कहीं-कहीं चेहरे से उड़ते रंग और फीकापन

आदिवासी बच्ची के हालात की गम्भीरता के साथ थकान एवं बेबसी को भी दर्शा रहे हैं। कहानी में आगे रुख करें तो सड़क का गहरा रंग, बोतल में पानी का कम्पन, जामलो के मटमैले कपड़े और अन्त में उसकी नीली-सफेद बद्दी वाली चप्पल और उस पर दरख्त से गिरी सूखी पीली पत्ती अपने आप में ही किसी चीज़ के खत्म होने का संकेत हैं। यह सब कुछ कहानी की वास्तविकता को दर्शा रहा है।

डिज़ाइन के दूसरे घटक जो कहानी में योगदान दे रहे हैं, वो हैं रेखा और आकार का प्रयोग, रोशनी का प्रयोग एवं टेक्सचर। कहानी में एक वक्त ऐसा भी आता है जब जामलो वक्त की मार से थक-हार कर ज़मीन पर सिमटकर लेट जाती है। इस दौरान उसके आसपास के जंगल का खामोश दृश्य उसके अकेलेपन को दर्शाता है।

दूसरी ओर, दिखाया जा रहा है कि एक उच्च वर्ग का छोटा बच्चा तमाम सुविधाओं को दरकिनार कर, बच्चा होने की आम ज़रूरत की नज़र से नीचे बस्ती में खेल रहे बच्चों को देख रहा है। उस वक्त उसके चेहरे की मायूसी को साफ देखा जा सकता है जहाँ तमाम सुविधाएँ होने के बावजूद केवल उसका अकेलापन ही उसके साथ था। इस दृश्य समेत कुछ

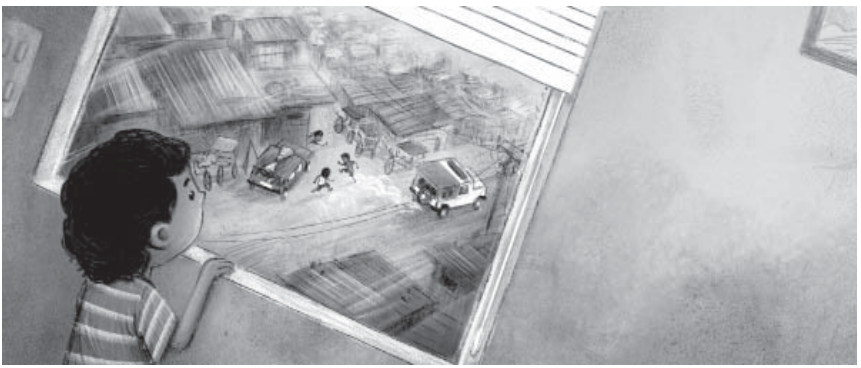

अन्य दृश्यों की गहराई को लम्बी सड़क से प्रस्तुत किया गया है। यहाँ पर आमने-सामने के दोनों पन्नों का इस्तेमाल बड़ी ही समझबूझ के साथ किया गया है। आम तौर पर किताबों में अगले पन्ने पर बढ़ने के साथ-साथ दृश्य भी बदलता जाता है पर इस किताब में दोनों पन्नों के चित्रों को आपस में बड़ी ही खूबसूरती के साथ जोड़ा गया है। किताब का आकार भी आड़ापन लिए हुए है जिससे एक ने इन्हें निखारने में मदद की है।

किताब के हर दृश्य में आधुनिकता को प्रतिकात्मक रूप से दिखाया गया है जो हमें वास्तविकता के नज़दीक ले जाता है। इसका एक बड़ा उदाहरण जामलो के किरदार में देखा जा सकता है। आदिवासी मज़दूर बच्ची को उसकी सरकारी स्कूल की यूनिफॉर्म में दिखाया गया है। अधिकांशत: देखा गया है कि ज़रूरतमन्द बच्चे अपने स्कूल की यूनिफॉर्म को स्कूल के बाद

लम्बे सफर की कहानी दिख पाए। एक दृश्य में तेज़ रफ्तार से जाती सरकारी गाड़ी का चित्रांकन है। उसकी रफ्तार इतनी तेज़ है कि वो छोटी-सी जामलो को सड़क पर खड़ा देख ही नहीं पाई।

कला माध्यम व शैली

किताब को बारीकी-से देखा जाए तो महसूस होता है कि मूड, वक्त और हालात अलग-अलग रंगों के ज़रिए उभरकर आए हैं। वॉटर कलर भी सारा दिन पहने रहते हैं। इसके पीछे वजह शायद यह हो सकती है कि इससे उनकी कपड़ों की ज़रूरत पूरी होती है और साथ ही, उन्हें एक साफ पोशाक पहनने को मिल जाती है। इसके अलावा, बद्दी वाली सफेद-नीले रंग की चप्पल जिसे अक्सर ही इस तरह के खास वर्ग के लोग इसके टूट जाने पर सेफ्टी पिन से जोड़कर दोबारा पहन लेते हैं। ठीक वैसी ही चप्पल जामलो के पैरों में थी और कुछ ऐसी ही मुश्किल का सामना जामलो

ने भी किया। चप्पल का टूटना भी उसकी हिम्मत के टूटने जैसा ही दिख रहा था। इस मुश्किल सफर में मील के पत्थर की भी खास भूमिका रही है जो जामलो के निरन्तर चलते जाने को दर्शा रहा है। विषम परिस्थिति को दर्शाती इस किताब को देखते वक्त मुझे डेनिस वॉन स्टोकर के एक आलेख की वे पंक्तियाँ याद आईं जहाँ वे कहती हैं, "एक किताब निजी अनुभव भी देती है।" यह कथन इस किताब से जुड़ाव को और पुख्ता करता है।

* * *

चित्र वे माध्यम हैं जिनके द्वारा किसी भी उम्र का व्यक्ति न केवल अपनी बात सरलता से कह पाता है बल्कि उसकी ज़िन्दगी से जुड़े अन्य पहलुओं को भी चित्रों में बखूबी देखा जा सकता है। जब किसी बात को कहना, लिखना या बताना मुश्किल होता है तब चित्र एक अच्छे विकल्प के रूप में काम करते हैं। असल में, चित्र उस आईने के समान होते हैं जो कुछ न बोलकर भी बहुत कुछ बोल देते हैं।

रुबीना खान: *मुस्कान* संस्था में एक दशक से ज़्यादा समय तक अलग-अलग भूमिकाओं में काम किया। इस दौरान संस्था द्वारा संचालित स्कूल में बतौर शिक्षिका कार्यरत रहीं। मुस्कान व यूनिसेफ के सहयोग से बाल संरक्षण के मुद्दों पर समुदाय व विभाग के साथ काम किया। वर्तमान में, अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन, भोपाल के बैरसिया ब्लॉक में कार्यरत। बाल साहित्य पढ़ने व लिखने में रुचि है।

सम्पर्क- rubina.khan@azimpremjifoundation.org

सभी चित्र: ***जामलो चलती गई*** किताब से साभार।

सन्दर्भ: बच्चों के विकास में साक्षरता और किताबों का महत्व - बौधिक, भावनात्मक एवं सामाजिक आयाम - डेनिस वॉन स्टोकर

नमक और महात्मा गांधी

आम तौर पर यह माना जाता है कि धरती के सभी संसाधनों पर सबका साझा अधिकार है। यदि संसाधनों को सिर्फ खनिज पदार्थों तक सीमित किया जाए तब भी जिस देश में वे संसाधन उपलब्ध हैं, वो देश अपनी रियाया के लिए उनका दोहन करता है और अपनी ज़रूरत के बाद शेष बचे हिस्से को अन्य देशों को निर्यात कर देता है। नमक भी एक ऐसा ही खनिज पदार्थ था जिसे कई देश समुद्री पानी से तैयार करते थे और उसका व्यापक व्यापार भी करते थे।

सदियों से भारत के लम्बे समुद्र तटीय इलाकों और राजस्थान की नमकीन झीलों से देश की ज़रूरत का नमक मिल जाता था। दो सौ साल पहले उड़ीसा की पहचान अच्छी गुणवत्ता वाले नमक की वजह से थी। लगभग सन् 1800 तक सब ठीक ही चल रहा था। भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी के पैर पसारने के साथ जैसे-जैसे भारत ब्रिटिश उपनिवेश बनता चला गया, भारत के कई उद्योगों पर इसका काफी बुरा असर पड़ा। इनमें नमक उद्योग भी एक ऐसा उद्योग था जिसे ब्रिटिश नमक के साथ न केवल प्रतिस्पर्धा करनी पड़ी, बल्कि विपरीत हालातों में संघर्ष करना पड़ा। एक देश जब दूसरे देश को अपना उपनिवेश बनाता है तो न सिर्फ वहाँ के संसाधनों पर कब्ज़ा चाहता है बल्कि वहाँ के उद्योगों को चौपट कर खुद का एकाधिकार बनाना चाहता है। जब ऐसा न कर पा रहा हो तो मनमाना टेक्स थोपना, अन्तर-राज्यीय व्यापार को बन्द करने की तिकड़में लगाना जैसे हथकण्डे अपनाए जाते हैं। ऐसा ही बहुत कुछ ब्रिटिश शासन के दौरान भारत में हुआ था। इसके विरोध में लोगों ने गांधीजी के नेतृत्व में नमक सत्याग्रह किया जिसकी वजह से ब्रिटिश हुकूमत को झुकना पड़ा। लेकिन जब भारत आज़ाद हुआ तब तक औपनिवेशिक ताकतों ने भारत को नमक के निर्यातक से नमक का आयातक बना दिया था। संसाधनों पर कब्ज़े की ऐसी ही कुछ रोचक जानकारियाँ मार्क कुरलान्स्की की किताब *सॉल्ट: अ वर्ल्ड हिस्ट्री* के 'नमक और महात्मा (सॉल्ट एंड ग्रेट सोल)' अध्याय में पढ़िए।

* * *

19वीं सदी में ब्रिटिश हुकूमत द्वारा भारत में नमक कारोबार पर कृत्रिम तरीकों से अवरोध खड़े करने से पहले भारत में सभी को सहजता से

वाजिब कीमत पर नमक उपलब्ध हो रहा था। प्राचीन काल से ही भारत के दोनों समुद्र के तटीय इलाकों में बनने वाले नमक और इसी तरह भारत के भीतरी इलाकों में नमकीन पानी की झीलों और पंजाब में नमक की खदानों से मिलने वाले नमक का इस्तेमाल व्यापार के लिए किया जा रहा था। पंजाब में नमक की खदानें थीं, लेकिन हिन्दु धर्म के कुछ अनुयायी ऐसा मानते थे कि चट्टानों के साथ पाया जाने वाला नमक पूरी तरह शुद्ध नहीं होता। इसी तरह नमकीन पानी उबालकर तैयार किए जाने वाले नमक की शुद्धता पर भी वे सवालिया निशान लगाते थे। परन्तु इस सबके बावजूद सूरज की रोशनी में वाष्पन की प्रक्रिया से तैयार नमक को हिन्दु धर्म के अनुयायी मान्यता देते थे। इस नमक को सहज-सरल तरीके से बनाया भी जा सकता था। वर्तमान में पाकिस्तान से सीमा बनाते पश्चिमी समुद्री तट और पूरब में कलकत्ता के बाद स्थित नदियों के डेल्टा इलाके में काफी सारा दलदली इलाका है। इन सब इलाकों में सूरज की रोशनी के कारण समुद्र के नमकीन पानी के वाष्पन से नमक की पतली परत (पपड़ी) बनती है।

पश्चिमी तटीय इलाके में गुजरात के कच्छ रन में लगभग 9000 वर्ग मील इलाके में पिछली कई शताब्दियों से नमक बनाया जा रहा है। यह दलदली इलाका समुद्री पानी से भरा रहता है। अगस्त और सितम्बर में बारिश के दौरान यह इलाका नदियों के पानी से भर जाता है, और फिर दिसम्बर में उत्तर की ओर से आने वाली ठण्डी-शुष्क हवा के कारण नमकीन पानी का वाष्पन होने लगता है।

देशी नमक का उत्पादन

पूर्वी तटीय इलाके में उड़ीसा के 320 किलोमीटर लम्बे और 10-60 किलोमीटर चौड़े क्षेत्र में नमक का उत्पादन होता था। कुदरती तौर पर यह इलाका नमक उत्पादन के लिए मुफीद था। यहाँ नमक की क्यारियों को 'खलारी' कहा जाता था। ये क्यारियाँ ग्रीष्म ऋतु के ज्वार के पानी से पूरी तरह भर जाती थीं और वहाँ की मिट्टी लवणयुक्त हो जाती थी। वाष्पीकरण के कारण नमक की जो परत बनती थी, उसे 'कर्टक' कहा जाता था। नमक की एक दूसरी किस्म को 'पांगा' कहा जाता था। इसके तहत लवणयुक्त मिट्टी में समुद्री जल मिलाकर उसे उबाला जाता था। इससे जो नमक तैयार होता था, उसे 'पांगा' कहा जाता था। नमक बार-बार बनाया जा सकने वाला पदार्थ होने की वजह से तटीय इलाकों में नमक तैयार करने के अलावा अन्य गतिविधियाँ नहीं हो पाती थीं। उड़ीसा में गरीब किसान भी खलारी में नमक बनाते थे जिसे वे खुद भी इस्तेमाल करते थे और बेचते भी थे।

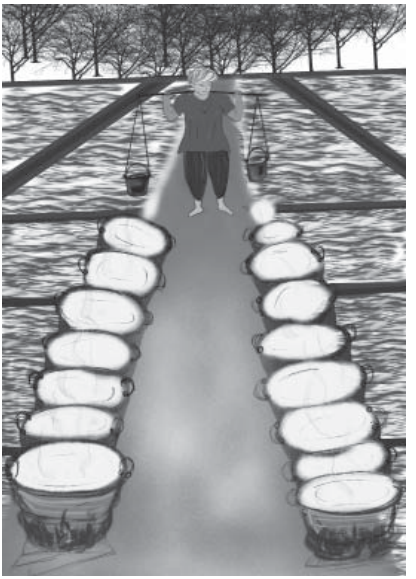

चित्र: हिमांशी मोने

चित्र-1: *उड़ीसा के लगभग 300 किलोमीटर लम्बे समुद्री किनारे पर कई जगहों पर नमक का उत्पादन किया जाता था। उड़ीसा में नमक तैयार करने का एक तरीका था, क्यारियों में समुद्री पानी भरकर उसका वाष्पन करना।*

दूसरा तरीका था, समुद्र की लवण युक्त मिट्टी में समुद्र का और पानी मिलाकर इस कीचड़नुमा मिट्टी को नांद में भरकर भट्टियों के ज़रिए गर्म करना। आग की वजह से जल्द ही कीचड़ सूख जाता और नांद नमक दिखने लगता।

यहाँ चित्र में एक मज़दूर नांद से नमक इकट्ठा कर रहा है। इस नमक को पांगा नमक कहा जाता है। मज़दूरों को मलांगी कहा जाता था।

नमक बनाने वाले इन खलारी यानी खेत की क्यारियों से झाड़ी-झंकाड़, जड़, घास आदि को उखाड़कर खेत को साफ कर लेते थे। इन उखाड़ी गई सामग्री का उपयोग खलारी बनाने में भी किया जाता था। ज्वार के समय समुद्र का पानी इन खलारी में आ जाता था और यहीं बना रहता था। ग्रीष्मकाल में ज्वार के वक्त और अधिक समुद्री जल यहाँ आकर इकट्ठा हो जाता था। इस लवणयुक्त मिट्टी में और नमकीन पानी के आने से नमक से संतृप्त कीचड़ बनता था। इस कीचड़ को एक-दूसरे से जोड़े गए लगभग 200 नांद में भरा जाता था। इन नांद के दोनों छोरों पर भट्टी की मदद से आग जलाकर हवा की मदद से इसकी आँच को सभी नांद तक पहुँचाया जाता था। धीरे-धीरे सभी नांदों में कीचड़ का वाष्पीकरण शुरू हो जाता था। इस कीचड़ को नांद में हिलाते जाने का काम जो लोग करते थे, उन्हें 'मलांगी' कहा जाता था। थोड़ी देर में हर नांद में कीचड़ की जगह तीन-चौथाई सफेद नमक दिखाई देने लगता था। इस नमक को नांद से निकालकर ढेरियाँ बनाई जाती थीं। इस तरह बेहतर गुणवत्ता का सफेद शुभ्र नमक भारत के सभी लोगों को कम-से-कम कीमत पर मिल जाता था।

इस पांगा नमक की भारत के कई इलाकों में काफी मांग थी। महानदी और उसकी सहायक नदियों की जलधारा में नाव की मदद से नमक को एक जगह से दूसरी जगह ले जाया जाता था। मध्य भारत के सुदूर

इलाकों से व्यापारी इस नमक को खरीदने के लिए आते थे। वे अपने साथ कपास, तम्बाकू, अफीम, गांजा, अनाज वगैरह लेकर आते थे और उसके बदले में नमक बैलगाड़ियों में भरकर ले जाते थे।

बंगाल के ब्रिटिश व्यापारी भी इस नमक को खरीदते थे। 18वीं सदी में अँग्रेज़-फ्रांसीसी युद्ध में यही नमक गोला-बारूद में इस्तेमाल हो रहा था।

प्राचीन काल से ही भारत में नमक पर थोड़ा-बहुत कर लगाया जाता था। ब्रिटिश लोगों के भारत आने के समय भारत के काफी बड़े इलाके पर मराठा हुकूमत का नियंत्रण था। उड़ीसा पर नियंत्रण करने वाले मराठा सरदार द्वारा नमक के व्यापारियों से कर वसूल किया जाता था। नमक के व्यापार का आकार इतना बड़ा था कि इस मामूली कर से भी मराठा राज की बड़ी आमदनी हो जाती थी। उड़ीसा में नमक की कीमत नियंत्रित रहे और बाज़ार में उड़ीसा का नमक महंगा न हो जाए, इसे ध्यान में रखते हुए नमक पर कर का निर्धारण किया जाता था। इस कर से प्राप्त आमदनी का उपयोग आम तौर पर नमक के उत्पादन को प्रोत्साहित करने के लिए ही किया जाता था।

18वीं सदी में इंग्लैंड के चेशायर में नमक का उत्पादन बड़े पैमाने पर शुरू किया गया और इस नमक के लिए ब्रिटिश व्यापारियों को बाज़ार

चित्र-2: *मराठा सरदार रघूजी भोसले*

की ज़रूरत महसूस होने लगी। लीवरपूल का नमक गुणवत्ता और कीमत, इन दोनों लिहाज़ से उड़ीसा के नमक से प्रतिस्पर्धा नहीं कर पा रहा था। सन् 1790 में ब्रिटिश व्यापारियों ने उड़ीसा में मौजूद मराठा सरदार रघूजी भोसले से उड़ीसा के समस्त नमक भण्डार खरीदने के लिए अनुमति मांगी। रघूजी ने इस नमक खरीदी के पीछे निहित अँग्रेज़ व्यापारियों की मंशा को भाँप लिया था। ऐसा करके अँग्रेज़ बाज़ार से नमक गायब करके कृत्रिम तरीके से नमक की कीमतों को बढ़ाना चाहते

थे। जब रघूजी ने नमक खरीदने की अनुमति नहीं दी तो अँग्रेज़ों ने बंगाल में उड़ीसा के नमक की बिक्री पर पाबन्दी लगा दी।

बंगाल-उड़ीसा की सीमा पर घने जंगल थे। इस वजह से सीमा पर पहरा देना मुश्किल काम था। इस पाबन्दी की वजह से तस्करी बढ़ी और बंगाल में उड़ीसा का नमक काफी मात्रा में पहुँचने लगा। उड़ीसा के नमक के सामने अँग्रेज़ों का नमक टिक नहीं पा रहा था। सन् 1803 में तस्करों से निपटने के नाम पर अँग्रेज़ों ने सेना का इस्तेमाल करके उड़ीसा पर कब्ज़ा कर लिया और उसे बंगाल में मिला दिया।

अँग्रेज़ों की नमक नीति

1 नवम्बर, 1804 को एक करार के तहत अँग्रेज़ों का उड़ीसा के पूरे नमक कारोबार पर एकाधिकार हो गया। निजी नमक की बिक्री पर भी पाबन्दी लगाई गई। जिन लोगों के पास जितने नमक के भण्डार थे, उन्हें तुरन्त निर्धारित मूल्य पर अँग्रेज़ों को बेचने का फरमान जारी कर दिया गया। नमक के यातायात पर भी पाबन्दी लगा दी गई। इतना ही नहीं, छोटी व्यापारिक नावों पर कर्मचारियों द्वारा खुद के उपयोग के लिए ले जाए जा रहे नमक पर भी निगाह रखी जाती थी। अगले दस साल के भीतर एलान कर दिया गया कि अँग्रेज़ों के अलावा अन्य किसी व्यक्ति द्वारा नमक तैयार करने को गैर-कानूनी माना जाएगा। ऐसी गैर-कानूनी गतिविधियों पर नज़र रखने के लिए अच्छा-खासा वेतन देकर लोगों की नियुक्ति की गई।

नमक का कारोबार खत्म होने की वजह से उड़ीसा के ज़मीदारों ने अँग्रेज़ों का विरोध किया। उड़ीसा पर अँग्रेज़ों के कब्ज़े से पहले, उत्तरी उड़ीसा में मलांगी स्थानीय ज़मींदारों के अधीन काम करते थे। मलांगी को नाममात्र की मज़दूरी देकर उत्पादित नमक की बिक्री से ज़मींदार भरपूर मुनाफा कमाते थे। इसके अलावा मलांगी समुद्र के किनारे की ज़मीनों को ज़मींदारों से किराए पर लेकर नमक बनाते थे। ऐसे में किराए के अलावा ज़मींदारों को उपयोग के लिए मुफ्त में नमक मिल जाता था।

फिर भी, मलांगियों के लिए अँग्रेज़ों द्वारा स्थापित की गई एकाधिकार व्यवस्था के मुकाबले ज़मीदारों के अधीन काम करना ज़्यादा सहज था। अँग्रेज़ व्यापारी मलांगी को नमक उत्पादन के लिए पेशगी (एडवांस) रकम देते थे जिसकी वजह से मलांगी कर्ज़ के जाल में फंसते जा रहे थे। इस कर्ज़ के भुगतान के लिए मलांगी अँग्रेज़ों के नमक विभाग के गुलाम बनते जा रहे थे।

शुरुआत में ज़मींदारों ने मलांगियों से अँग्रेज़ों के साथ सहयोग न करने के लिए कहा। मलांगियों ने भी गैर-कानूनी तरीके से नमक बनाना शुरू

किया जिसकी वजह से हज़ारों की संख्या में मलांगी गिरफ्तार किए गए। सन् 1817 में मलांगियों ने विद्रोह करते हुए अँग्रेज़ों के नमक उत्पादन की जगहों, गोदामों, एजेंटों पर हमले किए और एजेंटों को मार भगाया।

लेकिन यह विद्रोह सफल नहीं हो सका। परन्तु कई मलांगी भूमिगत तरीके से नमक उत्पादन करते रहे और ऐसे कई परिवार इस गैर-कानूनी उद्योग पर अपना गुज़ारा कर रहे थे। अँग्रेज़ों की नमक नीति की वजह से भारतीय जनता बेहद चिढ़ी हुई है, इसका एहसास इंग्लैंड में सभी को था।

19वीं सदी की शुरुआत में नमक पर लगाए करारोपण से मुनाफा मिले, नमक की तस्करी रोकी जा सके, इसलिए ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा बंगाल में जगह-जगह जाँच चौकियाँ खड़ी की गईं। सन् 1834 में जी.एच. स्मिथ नामक उत्साही अँग्रेज़ अधिकारी को कस्टम्स विभाग का कमिशनर बनाया गया। उसने अपने बीस साल के कार्यकाल में पूरे बंगाल में कस्टम्स लाइन के दफ्तरों को खड़ा कर दिया जिन्हें पार कर नमक ले जाने पर कर देना होता था। उन दिनों तम्बाकू जैसी अनेक महत्वपूर्ण वस्तुओं को टैक्स के दायरे से बाहर कर दिया गया था ताकि कस्टम कर्मचारी सिर्फ और सिर्फ नमक पर अपना ध्यान केन्द्रित कर सकें। इन कर्मचारियों को हमेशा की तरह भरपूर अधिकार लेकिन कम पगार मिलती थी। इनके हाथ में तलाशी, जब्ती और गिरफ्तारी जैसे असीमित अधिकार थे। रिश्वत और भ्रष्टाचार की परम्परा तो सभी जगह मौजूद थी ही। सन् 1840 में इस कर प्रणाली का अधिक-से-अधिक पालन किया जा सके, इसके लिए ईस्ट इंडिया कम्पनी ने अत्यन्त उत्साहपूर्वक एक विशाल कँटीली बाड़ बनाने की योजना बनाई। यह बाड़ 14 फीट ऊँची और 12 फीट चौड़ी थी जो कँटीली झाड़ियाँ लगाकर बनाई गई थी। नमक की तस्करी रोकने के लिए बंगाल की पश्चिमी सीमा पर यह बाड़ सबसे पहले बनाई गई। सन् 1857 के विद्रोह के बाद ब्रिटिश हुकूमत मज़बूत होने के साथ कस्टम की यह लाइन हिमालय से उड़ीसा तक लगभग 2500 किलोमीटर तक फैल गई।

नमक पर भेदभाव पूर्ण कर

कँटीले बबूल, आपस में फँसे बांस आदि लगाकर बनाई घनी बाड़ में निश्चित दूरी पर कस्टम चौकियाँ बनाई गई थीं, जहाँ कस्टम अधिकारी तैनात होते थे। सिर्फ इन्हीं चौकियों से ही बाड़ को पार किया जा सकता था, अन्यथा बाड़ को पार करना मुमकिन नहीं था। सन् 1870 तक इस कस्टम लाइन पर 12000 कर्मचारियों की तैनाती कर दी गई थी।

शुरुआत में अँग्रेज़ों ने अपने अधिकार में उड़ीसा में नमक का

उत्पादन करवाने और अपने द्वारा तय की गई कीमत पर बेचने का विचार किया था। इस खयाल को अमलीजामा पहनाने के लिए उन्होंने उड़ीसा के समुद्र तटीय इलाकों में नमक उत्पादन का इलाका बढ़ाने के लिहाज़ से वहाँ के जंगलात साफ करना शुरू किए। परन्तु ब्रिटिश व्यापारियों को डर था कि उड़ीसा के नमक के चलते उनका नमक बंगाल के बाज़ार में टिक नहीं सकेगा। इसलिए उन्होंने ब्रिटिश पार्लियामेंट में दबाव बनाकर उड़ीसा में नमक का उत्पादन धीरे-धीरे बन्द करने सम्बन्धी राय बनवाई। सन् 1836 में भारत के नमक और भारत में आयात किए गए नमक पर एक-जैसी दर से ही करारोपण कर दिया गया। नमक स्थानीय निर्मित है या बाहर से आया है, इससे शासन को कोई फर्क नहीं पड़ता था क्योंकि नमक जो भी हो, उससे मिलने वाला कर तो एक-जैसा ही था।

इस किस्म की कर प्रणाली के चलते स्थानीय नमक बाज़ार की प्रतिस्पर्धा में टिक नहीं सकता था। इस नमक की बिक्री भी धीमी गति से होती थी इसलिए कलकत्ता के गोदाम में स्थानीय नमक का ढेर लग जाता था। कलकत्ता की नम जलवायु में नमक के गीले होकर गिलगिला होने का खतरा बना रहता था। बंगाल में ब्रिटिश हुकूमत के अधिकारियों ने उड़ीसा का नमक कम दर्जे का और खर्चीला होने की बात कहकर उड़ीसा में नमक उत्पादन की कई इकाइयों को बन्द कर दिया। इसकी वजह से सन् 1845 में उत्पादित नमक की मात्रा पिछले साल के मुकाबले आधी रह गई थी।

नमक इकाइयों के बन्द होने की वजह से कम हो रहे उत्पादन को गम्भीरता से लेते हुए उड़ीसा के कमिशनर ए.जे.एम. मिल्स ने बंगाल के अधिकारियों को चेताया कि यदि नमक का उत्पादन कम करेंगे तो यहाँ के किसान शासन के विरोध में उठ खड़े होंगे क्योंकि नमक उत्पादन के इलाके के इन किसानों को नमक बनाने के अलावा और कुछ नहीं आता। इन सब किसानों के लिए खेती के अलावा नमक उत्पादन एक महत्वपूर्ण सहायक उद्योग है।

* * *

नमक का उद्योग ज़ोर-शोर से चल रहा था। उस दौर में भी मलांगी लोग नमक के गोदामों के आसपास बेहद फटेहाल जीवन जी रहे थे। उनके परिवार से बीबी, बच्चे - सब नमक के उत्पादन में लगे हुए थे। कुछ मलांगी किसी दूर के इलाके में जाकर नमक बनाने का काम कर रहे थे। ये लोग अपना गाँव और परिवार छोड़कर 5-6 महीनों के लिए बाहर जाकर अस्थाई झोपड़ी बनाकर नमक उत्पादन का काम करते थे।

ब्रिटिश कर्मचारी नमक के यातायात या भण्डारण के दौरान होने

वाले नुकसान की भरपाई भी मलांगी लोगों से ही करवाते थे। देखा जाए तो नमक के यातायात से इन मज़दूरों का कोई लेना-देना नहीं था।

अँग्रेज़ों की यह नीति थी कि नमक उत्पादन वाली जगह के आसपास जंगल होने चाहिए ताकि जलाऊ लकड़ी पास-के-पास ही मिल सके। लेकिन कुछ बरसों में ही नमक उत्पादन क्षेत्र बढ़ाने की गरज से जंगलों को काटा जाने लगा। इस वजह से जंगल में मौजूद हिंस्र जानवरों ने मलांगियों पर आक्रमण शुरू कर दिए और कई मलांगियों को जान से हाथ धोना पड़ा। वर्ष 1846 में नमक के एक सीज़न में 22 मलांगी मारे गए। हुकूमत द्वारा जंगल के हिंस्र जानवरों को मारने के लिए बड़े इनामों की घोषणा भी की गई, लेकिन इस सबसे भी इनका खौफ कम नहीं हुआ।

सन् 1863 में ब्रिटिश हुकूमत ने स्थानीय नमक के उत्पादन को जल्द-से-जल्द बन्द करने के लिए नमक उत्पादकों को स्पष्ट सन्देश दे दिया। नमक का उत्पादन बन्द होते ही सन् 1866 में उड़ीसा में भयंकर अकाल पड़ा। इस अकाल में सबसे ज़्यादा मलांगी समाज के लोग मारे गए क्योंकि उनके पास किसी भी तरह से इकट्ठा किया गया अनाज था ही नहीं। हुकूमत के इस फैसले से बंगाल में नमक की कमी महसूस होने लगी।

ऐसे हालात में उपाय के तौर पर अँग्रेज़ों ने कर्टक नमक का उत्पादन खुद ही शुरू कर दिया ताकि स्थानीय लोगों को कम कीमत पर नमक उपलब्ध कराया जा सके और उन्हें थोड़ा रोज़गार भी मिल जाए। यह नीति इतनी सफल रही कि लीवरपूल का नमक इस स्थानीय नमक के सामने टिक न पाया। इसलिए सन् 1893 में स्थानीय नमक के उत्पादन को फिर से बन्द कर दिया गया।

स्थानीय नमक का उत्पादन बन्द होने से मलांगी लोग एक बार फिर दाने-दाने को मोहताज होने लगे क्योंकि नमक ही उनका एकमात्र उत्पादन और रोज़गार का स्रोत था। नमक की क्यारियों में अपने आप तैयार होने वाला सफेद-पपड़ीदार नमक मानों आस लगाए बैठा हो कि कब उसे यहाँ से निकालकर बेचने के लिए लेकर जाएँगे। लेकिन पपड़ी को खरोंचना भी कानूनन जुर्म था और इसके लिए भी सज़ा तय थी। नमक से सम्बन्धित कोई भी गतिविधि करने पर उड़ीसा में सख्त मनाही थी। अपने भूखे बीबी-बच्चों को छोड़कर लोग काम की खोज में अन्य प्रदेशों में जाने लगे। वहाँ उन्हें रुपए कमाने के लिए जैसे भी अस्वास्थ्यकर हालात मिल रहे थे, वे उनमें रहने के लिए मजबूर थे। इन्हीं रुपयों में से कुछ वे अपने घर पर भी भिजवा रहे थे। धीरे-धीरे उड़ीसा से मलांगी लोग गायब हो गए। वहाँ जो गरीब परिवार बच गए थे, उन्हें नमक मिलना भी मुश्किल हो गया था।

नमक के लिए विद्रोह

अँग्रेज़ों की नमक नीति के विरोध में सन् 1888 में उड़ीसा में पहली सार्वजनिक सभा आयोजित की गई थी। महानदी के किनारे स्थित कटक शहर में इसका आयोजन किया गया। इस सभा में यह मुद्दा उठाया गया कि भारत की गरीब जनता पर इंग्लैंड की जनता के मुकाबले 30 गुना अधिक नमक कर लगाया जाता है। नमक पर ब्रिटिश शासन द्वारा लगाया गया यह कर जनता पर अन्याय है क्योंकि कर पर दिया गया नमक तो विदेश से आयात किया गया है। शासन को चाहिए कि आमदनी पर कर की दर को बढ़ाए। इसी तरह, यूरोप से भारत में शासन की विविध सेवाओं में काम करने के लिए आने वाले विदेशी नागरिकों की भर्ती पर रोक लगाकर रुपया बचाना चाहिए। नमक पर कर न लगाने से होने वाले नुकसान की भरपाई, विदेशी नागरिकों की भर्ती रोककर हुई बचत से की जा सकती है। ऐसे कई तर्क इस सभा में दिए गए।

20वीं सदी की शुरुआत में भारत की प्रान्तीय असेंबलियों में अँग्रेज़ों की नमक नीति पर तीखी प्रतिक्रियाएँ व्यक्त की गईं, आलोचना की गई। दूसरी ओर, सन् 1923 में आमदनी बढ़ाने की गरज से बजट में नमक पर टैक्स को दोगुना कर दिया गया। भारतीय लेजिस्टलेटिव असेंबली ने इस प्रस्ताव पर सहमति देने से मना कर दिया। फिर भी वायसराय लॉर्ड रीडिंग ने इस प्रस्ताव को मंज़ूरी दे दी। सन् 1927 में लेजिस्टलेटिव असेंबली ने नमक कर को आधा करने का प्रस्ताव रखा। कुछ सदस्यों का तो मानना था कि टैक्स को समाप्त ही कर दिया जाए। परन्तु ब्रिटिश शासन ने इस प्रस्ताव को नहीं माना।

1929 में लेजिस्टलेटिव असेंबली में उड़ीसा के सदस्य नीलकंठ दास ने यह मांग की थी कि उड़ीसा में पहले की तरह नमक का उत्पादन किया जाए और नमक टैक्स को हटा दिया जाए। उनकी इस मांग पर शासन ने कहा कि इस टैक्स की वजह से ही भारत के गरीब लोग सरकार को कुछ तो देते हैं।

ब्रिटिश हुकूमत इस पूरे मुद्दे को गम्भीरता से नहीं ले रही थी। ब्रिटिश संसद में भारतीय मामलों के अंडरसेक्रेटरी लॉर्ड विंटरलॉन का मानना था कि इस मुद्दे पर इतना विचार-विमर्श करने की कोई ज़रूरत ही नहीं है। संसद में सभी लोग अंडरसेक्रेटरी की राय से सहमत हों, ऐसा नहीं था। ब्रिटिश संसद में सर हेनरी क्राइक (Henry Craik) ने नमक नीति के कारण निर्मित हुई कष्टप्रद स्थितियों के कारण भारत में ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ आन्दोलन होने तथा कठिन हालात बनने की आशंका व्यक्त की थी। कुछ संसद सदस्यों का मानना था कि नमक पर कर की

वजह से ब्रिटिश हुकूमत को किसी भी तरह का खतरा नहीं है। लेबर पार्टी ने ज़रूर नमक पर टैक्स की वजह से आयरलैंड जैसे हालात बनने के खतरे की ओर इशारा किया था।

सन् 1930 में उड़ीसा में खुलेआम विद्रोह का एलान किया जाने लगा। महात्मा गांधी जैसे नेतृत्वशाली व्यक्ति ने इन विद्रोहों को नमक कानून के खिलाफ आन्दोलन का स्वरूप दिया।

दांडी यात्रा

सन् 1929 में काँग्रेस के लाहौर अधिवेशन में नमक सत्याग्रह की योजना सामने आई। भारत के अनेक इलाकों में नमक का मुद्दा सुलग रहा था। उड़ीसा के विद्रोह के अलावा भी कुछ अन्य इलाकों में इस पर पहलकदमी हो रही थी। गांधीजी के कई करीबियों को भी यह सुनकर हैरानी हो रही थी कि नमक सत्याग्रह स्वतंत्रता आन्दोलन का एक हिस्सा हो सकता है क्योंकि उनके विचार में नमक राष्ट्रीय मुद्दा नहीं बन सकता था। भारत में इतने लोगों को नमक कानून से दिक्कत हो रही थी फिर भी अँग्रेज़ी हुकूमत की खामोशी एक गैर-ज़िम्मेदाराना रवैये का उदाहरण है, यह बात सबको समझ में आने लगी थी।

12 मार्च, 1930 को गांधीजी और उनके चुने गए 78 अनुयायी साबरमती आश्रम से बाहर निकले और पैदल-पैदल करीब 240 मील की दूरी पर स्थित दांडी समुद्र तट की ओर चल दिए। इस यात्रा का प्रमुख मकसद था, दांडी के समुद्र तट तक जाना और वहाँ समुद्री पानी के वाष्पित हो

चित्र-3: *दांडी यात्रा या नमक सत्याग्रह, महात्मा गांधी के नेतृत्व में औपनिवेशिक भारत में अहिंसक सविनय अवज्ञा का एक कार्य था। चौबीस दिवसीय अभियान पदयात्रा 12 मार्च से 6 अप्रैल, 1930 तक ब्रिटिश नमक एकाधिकार के खिलाफ कर-प्रतिरोध और अहिंसक विरोध की प्रत्यक्ष कार्रवाई के रूप में चली।*

जाने से बनी नमक की परत को खरोंचकर, नमक इकट्ठा करना। और इस तरह अँग्रेज़ों के बनाए गए नमक कानून को चुनौती देना।

5 अप्रैल को, करीब 25 दिन बाद गांधीजी योजना के मुताबिक दांडी पहुँच गए थे। शुरुआत में जहाँ सफर 78 अनुयायियों के साथ शुरू हुआ, वहीं अब हज़ारों का जनसमूह साथ उमड़ गया था। इस जनसमूह में समाज के सभी तबकों के स्त्री-पुरुष शामिल हेा गए थे।

उस रात गांधीजी ने सभी लोगों के साथ अरब सागर की हिलोरे मारती लहरों की गर्जना के बीच प्रार्थना की। अगली सुबह जल्द उठकर, नित्य क्रियाओं से निवृत्त होने के बाद, उन्होंने समुद्र के किनारे उस तरफ रुख किया जहाँ नमकीन पानी के सूखने से नमक की परत बनी हुई थी। उन्होंने झुककर वहाँ से एक मुट्ठी नमक उठाया। इस तरह उन्होंने अँग्रेज़ों के नमक कानून को चुनौती दी।

उड़ीसा में आन्दोलन

गांधीजी के दांडी तक पहुँचने से पहले ही लोगों ने तय कर लिया कि वे उड़ीसा में भी नमक बनाएँगे। सारा देश गांधीजी का अनुकरण करे या न करे लेकिन उड़ीसा के लोगों ने नमक उत्पादन चालू रखने का निश्चय कर लिया था। उन्होंने कटक में एक सभा का आयोजन किया जिसमें उड़ीसा के अलग-अलग हिस्सों से स्वयंसेवक पहुँचने लगे। उन्होंने स्वेच्छा से नमक कानून को तोड़ने और हर सम्भव मदद सम्बन्धी शपथ

चित्र-4: *अँग्रेज़ी हुकूमत नमक सत्याग्रह की सभाओं पर पाबन्दी लगाती और इन सभाओं में भाषण देने वाले वक्ताओं को पकड़कर जेल में डाल देती थी।*

पत्र तैयार किए। नमक सत्याग्रह के स्वरूप और महत्व को लेकर वहाँ नियमित रूप से सभाएँ होने लगी थीं। अँग्रेज़ी हुकूमत ने इन सभाओं पर पाबन्दी लगाई और इन सभाओं में भाषण देने वाले वक्ताओं को पकड़कर जेल में डालना शुरू किया।

गांधीजी के आन्दोलन को समर्थन देने के लिहाज़ से सभी जगहों पर नमक बनाने की तारीख 6 अप्रैल तय की गई थी। उड़ीसा में स्थानीय लोगों ने शंखनाद किया, फूलों की वर्षा की और अपने अहिंसक आन्दोलन की शुरुआत की। इन लोगों ने गोपबंधु

चित्र-5: *12 मार्च, 1930 को 78 सत्याग्रहियों के साथ शुरू हुई पदयात्रा का समापन 5 अप्रैल को दांडी नामक जगह पर हुआ। वहाँ गांधीजी ने नमक इकट्ठा करके नमक कानून को चुनौती दी। चित्र में गांधीजी नमक उठाते हुए।*

चौधरी के नेतृत्व में समुद्र तट की ओर यात्रा शुरू की। नेताओं की गिरफ्तारी के बाद भी यात्रा रोकी नहीं गई। 13 अप्रैल को हज़ारों की तादाद में लोग इंचुरी पहुँचे और नमक कानून को तोड़ा। सभी ने नीचे झुकते हुए अपनी मुट्ठी को नमक से भर लिया। पुलिस ने सख्ती दिखाते हुए उनकी मुट्ठी से नमक छीनने की कोशिश की। सत्याग्रहियों के समूह, एक के बाद एक, दौड़ते हुए समुद्र के किनारे जाते और मुट्ठी में नमक भर लेते थे, पुलिस उनको गिरफ्तार कर लेती थी। इस तरह अगले कई दिन यह आन्दोलन चलता रहा। जल्द ही जेल सत्याग्रहियों से भर गए लेकिन सत्याग्रही अनवरत इंचुरी पहुँचते ही जा रहे थे। पुलिस ने सत्याग्रहियों को गम्भीर धाराओं का डर भी दिखाया ताकि आन्दोलनकारी घबरा जाएँ लेकिन यह रणनीति भी काम नहीं कर रही थी। गांधीजी की दांडी यात्रा की वजह से केवल एक हफ्ते में यह आन्दोलन पूरे भारत में फैल गया।

गांधीजी और अन्य नेताओं ने गिरफ्तारी की स्थिति में भी आन्दोलन जारी रखने के लिए नेताओं की एक शृंखला बनाई थी। जब एक नेता गिरफ्तार किया जाता तो उसकी जगह लेने के लिए तुरन्त दूसरा नेता कमान सम्भाल लेता था। ब्रिटिश हुकूमत ने जवाहर लाल नेहरू, महादेव देसाई और देवदास गांधी को गिरफ्तार करके जेल भेज दिया था,

चित्र-6: *दांडी मार्च का मार्ग। गांधीजी और उनकी टोली ने 24 दिनों में 388 किलोमीटर की दूरी (साबरमती आश्रम से तटीय शहर दांडी तक) तय की। गांधीजी के लिए भी यह एक बड़ी उपलब्धि थी, क्योंकि उन्होंने 61 साल की उम्र में 24 दिनों में यह दूरी तय की थी।*

लेकिन वे गांधीजी को गिरफ्तार करने से बच रहे थे।

इसके बाद गांधीजी ने हुकूमत को सूचित किया कि वे धरसाना नमक कारखाने जा रहे हैं। अब तक शासन ने भी कार्यवाही का मन बना लिया था। गांधीजी को धरसाना पहुँचने से पहले ही गिरफ्तार करके जेल भेज दिया गया। गांधीजी की गिरफ्तारी के बाद ब्रिटिश प्रधानमंत्री पर अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर गांधी की रिहाई और शान्ति स्थापना के लिए अनुरोध आने लगे।

आखिरकार, ब्रिटिश हुकूमत को गांधीजी और अन्य नेताओं को रिहा करना पड़ा। इस रिहाई की वजह से शासन के साथ संवाद का माहौल बन सका। जल्द ही गांधी और वायसराय इरविन की मुलाकात तय हुई और मुलाकात भी हुई।

5 मार्च, 1931 को गांधी-इर्विन समझौते पर दस्तखत किए गए। इस समझौते के तहत समुद्र के तटीय इलाकों में रहने वाले लोग अपनी निजी ज़रूरत का नमक तट से इकट्ठा कर सकते थे। नमक सत्याग्रह के दौरान बन्दी बनाए गए राजनीतिक कैदियों की रिहाई का वायदा भी किया गया। लन्दन में एक गोलमेज़ सम्मेलन का प्रस्ताव भी रखा गया था। इस समझौते से शायद भारतीयों की सारी अपेक्षाएँ पूरी नहीं हो रही थीं, लेकिन एक महत्वपूर्ण कदम यह था कि पहली बार इंग्लैंड ने भारत को बराबरी से बैठाकर बातचीत का न्यौता दिया था।

आज़ाद भारत के हालात

सन् 1947 में जब भारत को आज़ादी मिली, उस समय भारत में घरेलू स्तर पर नमक का उत्पादन काफी कम था। भारत को अपनी

चित्र-7: *5 मार्च, 1931 को महात्मा गांधी और लॉर्ड इर्विन के बीच ऐतिहासिक समझौता हुआ। इसके तहत दांडी मार्च के राजनीतिक बन्दियों को रिहा किया गया और इस समझौते के बाद ही भारतीयों को फिर से नमक बनाने का हक मिला।*

ज़रूरतों को पूरा करने के लिए नमक आयात करना पड़ रहा था। (यहाँ इस बात का ध्यान रखना होगा कि नमक का उपयोग भोजन के अलावा कई उद्योगों में होता है जैसे कास्टिक सोडा, सोडा ऐश, साबुन-डिटरजेंट, जल मृदुकरण संयंत्र, रंगाई, क्लोर-अल्कली इंडस्ट्री आदि।) उस समय भारत की प्राथमिकता थी कि प्रथम पंचवर्षीय योजना की अवधि खत्म होते-होते देश में इतना उत्पादन होना चाहिए कि नमक आयात न करना पड़े। इसके लिए नए इलाकों में भी नमक उत्पादन के प्रयास किए गए। पारम्परिक रूप से भारत के तटीय इलाकों में समुद्री पानी को क्यारियों में भरकर उसका धूप में वाष्पन होने दिया जाता था। लेकिन गुजरात के कच्छ इलाके में भूमिगत खारे पानी का उपयोग भी नमक के उत्पादन में किया जाने लगा। भूमिगत खारे पानी में समुद्री पानी के मुकाबले ज़्यादा नमक घुला होता है। इस कारण समुद्री पानी की जगह भूमिगत खारे पानी का चलन बढ़ने लगा और साथ ही उत्पादन भी।

सन् 1947 के बाद आज़ाद भारत में नमक की कीमत हमेशा लगभग ऐसी रखी गई थी ताकि सामान्य जनता इसे आसानी-से खरीद सके। आज़ाद भारत में शुरुआत में नमक का उत्पादन छोटी सहकारी संस्थाओं

के मार्फत किया जाता था लेकिन यह कोशिश बहुत सफल नहीं रही। बाद में नमक उत्पादन में बड़ी कम्पनियों ने पहल की। यह अपेक्षा थी कि शासन नमक के उत्पादन से जुड़े मज़दूरों के हितों की रक्षा करेगा, इसलिए नमक कमिशनरों की नियुक्ति की गई। लेकिन मज़दूर अक्सर शिकायत करते हैं कि अहमदाबाद में गांधी आश्रम के पास बहने वाली नदी के दूसरे किनारे पर स्थित गुजरात सॉल्ट कमिशनर कार्यालय मज़दूरों के हितों की अनदेखी करके कम्पनियों के हितों को साधते हैं।

पंजाब सूबे की नमक की खदानें अब पाकिस्तान में हैं। गुजरात के तटीय इलाके और कच्छ का रन फिलहाल भारत में नमक उत्पादन के बड़े क्षेत्र हैं। इसके विपरीत, उड़ीसा में नमक उत्पादन के बहुत छोटे इलाके बचे हैं। किसी समय उड़ीसा के बालासोर, पुरी, गंजाम आदि ज़िलों में खूब नमक उत्पादन किया जाता था, लेकिन बाद में नमक उत्पादन की गतिविधि गंजाम ज़िले तक सिमटकर रह गई। उड़ीसा के कुल नमक उत्पादन का लगभग 95 प्रतिशत उत्पादन गंजाम ज़िले में होता है। और अब नमक के राष्ट्रीय उत्पादन में उड़ीसा राज्य की हिस्सेदारी दो प्रतिशत से भी कम है। गंजाम में भी समुद्री जल को उच्च ज्वार के दौरान नहरों के माध्यम से क्यारियों तक लाकर वाष्पन विधि का इस्तेमाल हो रहा है। इन नहरों में गाद इकट्ठा

चित्र-8: *रन ऑफ कच्छ के दलदल से नमक उत्पादन। भारत में विगत कुछ दशकों से नमक उत्पादन में गुजरात प्रथम स्थान पर काबिज़ है। गुजरात के कच्छ इलाके में हर साल अक्टूबर महीने से नमक उत्पादन का काम शुरू हो जाता है जो अगले साल मॉनसून शुरु होने तक चलता है।*

होने की वजह से सतत समुद्री पानी की पूर्ति बाधित होती है। उड़ीसा में नमक उत्पादन का क्षेत्र भी घटा और साथ ही उत्पादन एवं महत्व भी।

भारत का लगभग तीन-चौथाई नमक गुजरात से मिलता है। गुजरात के तटीय इलाके में इस व्यापार-उद्योग के फलने-फूलने से यहाँ के लोग अब गरीब लोगों में शुमार नहीं होते। लेकिन नमक उत्पादन करने वाले मज़दूरों को कम मेहनताना दिया जाता है। हर साल सितम्बर के महीने में गुजरात और भारत के अन्य प्रदेशों से हज़ारों मज़दूर यहाँ काम करने आते हैं। हफ्ते के सभी दिन काम करते हुए, अगले साल की गर्मी तक वे यहीं रहते हैं। नमक उत्पादन में भी कई तरह की अनियमितताएँ दिखाई देती हैं, मसलन - कम मेहनताना, मज़दूरों का रजिस्ट्रेशन न करना, मज़दूरों को सामाजिक सुरक्षा योजनाओं का लाभ न देना, बाल श्रम का इस्तेमाल आदि। कई मज़दूर जो समाज के निचले तबकों से आते हैं, वे व्यापारियों से लिए कर्ज़ में आकण्ठ डूबे दिखाई देते हैं। लगातार नमक से परावर्तित रोशनी में काम करने की वजह से कई मज़दूर वर्णान्ध (कलर ब्लाइंड) हो जाते हैं।

सन् 1998 में गुजरात में आए चक्रवात में बड़ी संख्या में मज़दूर मारे गए थे। उस साल नमक की कीमत में उछाल भी आया लेकिन साल के अन्त तक मज़दूरों के दूसरे जत्थे काम पर पहुँच गए और एक बार फिर नमक की कीमत में कमी आ गई। भारत शासन की ओर से नमक कामगारों के वेलफेयर के लिए कई योजनाएँ शुरू की गई हैं जो उनके स्वास्थ, बच्चों की शिक्षा और आवास (नमक मज़दूर आवास योजना) सम्बन्धी हैं। परन्तु फिर भी नमक कामगारों को उचित श्रममूल्य और शिक्षा, स्वास्थ्य व बेहतर देखभाल की अभी भी दरकार है।

जब हम कहते हैं कि नमक पर हरेक भारतीय का अधिकार है, सभी को नमक सस्ता और आसानी-से मिलना चाहिए तो इस बात का खयाल रखना भी उतना ही ज़रूरी है कि उस नमक को हम तक लाने वाले श्रमिकों के काम के हालात और उनका जीवन भी बेहतर बने।

यह लेख मार्क कुरलान्स्की की किताब *सॉल्ट: अ वर्ल्ड हिस्ट्री,* प्रकाशक: विंटेज बुक्स, लंदन के 'नमक और महात्मा (सॉल्ट एंड ग्रेट सोल)' अध्याय का सम्पादित अंश है। यह लेख मराठी *संदर्भ* के अंक-76 से साभार।

मराठी से अनुवाद एवं सम्पादन: माधव केलकर: *संदर्भ* पत्रिका से सम्बद्ध हैं। लेख में ज़रूरत अनुसार कुछ हिस्से जोड़े और सम्पादित किए गए हैं।

कृष्ण विवर

जयंत विष्णु नारलीकर

"यह कम्प्यूटर तो बहुत ही परेशान कर रहा है, यार!" कॉफी के प्याले में चम्मच चलाते हुए, प्रकाश बड़ी झल्लाहट से बोला! "पिछले हफ्ते से कम-से-कम पचास बार पूछ चुका हूँ। पर वह एक ही जवाब पर अड़ा हुआ है।"

"क्या कहता है, तुम्हारा कम्प्यूटर?" संजय ने भोला बनते हुए पूछा! वह शुद्ध गणित का विद्यार्थी था। अत: कम्प्यूटर को कुछ तुच्छ भाव से देखता था। कोई चित्रकार किसी पुताई करने वाले को जिस प्रकार से देखता है, बस वैसे ही।

"कम्प्यूटर कहता है कि मेरे मूल सिद्धान्त ही गलत हैं। मैंने सोचा था कि 'प्रॉफ' द्वारा दिया गया डेटा कम्प्यूटर के सुपुर्द कर दूँगा और सारा दिन हाइकिंग टूर पर निकल जाऊँगा। पर 'मैन प्रपोज़िज़ एण्ड कम्प्यूटर डिसपोज़िज़', यही सत्य है।"

यर्किस वेधशाला से गुरु ग्रह के बारे में मिली नई जानकारी, कम्प्यूटर में जाँच कराने के लिए, प्रकाश के पास आई थी।

"तुमने जोड़-घटा में गड़बड़ कर

दी होगी।" यूँ भी फिज़िक्स वालों का गणित कच्चा ही होता है – प्रत्येक गणित वाले की यही धारणा होती है। उसी बात को बड़े विश्वास से संजय ने कह डाला।

"देखो, मेरे जोड़-बाकी का सवाल ही नहीं उठता! यदि गलती होगी भी तो न्यूटन तथा आइन्स्टीन की समझो। ग्रहों की गति उन्हीं के सिद्धान्तों पर तय की जाती है। यह बात तुम जैसे अल्पज्ञानी को पता होनी चाहिए और यह कम्प्यूटर कहता है कि यह जानकारी सिद्धान्तों के अनुसार नहीं है। प्रॉफ को विश्वास है कि डेटा गलत नहीं है। पता नहीं, गड़बड़ कहाँ है।" प्रकाश शिकायत भरे स्वर में बोला।

"मेरे विचार से तुम खगोल शास्त्र के दशावतारों का जाप करो, ताकि तुम्हें प्रेरणा मिल सके!" मज़ाक में संजय का मंत्रोच्चार शुरू हो गया। "बोलो, न्यूटनाय नमः, हैल्य नमः, हर्शलाय नमः, एडम् साय नमः एडिंग्टनाय नमः....."

"एडम्स... क्या पते की बात कही यार। बालादपि सुभाषितम् ग्राह्यम्।" संजय की पीठ पर धौल जमाकर, कॉफी वहीं छोड़कर प्रकाश तेज़ी-से निकल गया।

संजय ठगा-सा देखता रह गया, क्योंकि इंस्टिट्यूट में घनचक्कर बने रहने का हक सिर्फ गणित वालों का था, ऐसा उसका मानना था। प्रकाश का पागलपन उसे रास नहीं आया।

***

इंस्टिट्यूट में खगोलशास्त्र के प्रोफेसर रमेश अग्रवाल ही 'प्रॉफ' हैं। ग्रहों तथा उपग्रहों के भ्रमण के गणित 'सेलेस्टियल मैकेनिक्स' में वे दुनियाभर में प्रख्यात थे। इक्कीसवीं सदी के आरम्भ में इस विषय में अनुसन्धान करने वाले, बहुत कम वैज्ञानिक थे। यदि इस विषय में कोई गम्भीर या कठिन प्रश्न सामने आता तो उससे सम्बन्धित खगोलशास्त्री, अग्रवालजी के पास दौड़े चले आते। इसीलिए गुरु ग्रह के बारे में प्राप्त नई जानकारी उनके पास भेज दी गई थी।

प्रकाश पावटे उनका प्रिय विद्यार्थी था। नई जानकारी का निरीक्षण करने के पश्चात् अधिक जाँच हेतु उन्होंने उसे प्रकाश के पास भेज दिया। "अन्तिम निष्कर्ष निकालने से पहले मुझसे न मिलना," ऐसी हिदायत उसे देने की ज़रूरत भी नहीं थी।

इस बात को एक हफ्ता गुज़र गया, और प्रकाश का कोई अता-पता नहीं। इस बात से वे आश्चर्य में डूब गए। उन्हें खुद उससे जाकर मिलना होगा, ऐसा वे सोच ही रहे थे कि प्रकाश दौड़ता हुआ उनके कमरे में दाखिल हुआ। कम्प्यूटर द्वारा दिए गए जवाबों का सारा पुलिन्दा उसने टेबल पर पटका और जल्दी-जल्दी कुछ बताने लगा। उसकी एक भी बात प्रोफेसर साहब के पल्ले नहीं पड़ रही थी। इससे पहले उन्होंने प्रकाश को

कभी इतना उत्तेजित नहीं देखा था।

"आराम-से! आराम-से अपनी बात कहो। प्रति मिनट सिर्फ एक ही वाक्य बोलो, तब ही मैं कुछ समझ पाऊँगा।" वे शान्ति से बोले।

"सर! सन् 1846 के आसपास एडम्स ने यूरेनस ग्रह की गति में अनियमितता पाकर यूरेनस के निकट मौजूद नेप्च्यून ग्रह को खोज निकाला। मुझे विश्वास है कि गुरु के निकट भी ग्रह जैसी ही कोई वस्तु आ पहुँची है। कम्प्यूटर के जवाब, इसी बात की पुष्टि कर रहे हैं।"

बिना सबूत कोई भी घोषणा न करने के नियम का पालन, प्रोफेसर साहब तथा उनके विद्यार्थी सदैव करते थे। फिर भी प्रकाश का कथन इस कदर अनपेक्षित था कि उन्होंने स्वयं ही इसकी जाँच करने का निर्णय किया। अगले दस दिन, वे दोनों इसी काम में जी-जान से जुटे रहे और विभिन्न खगोलशास्त्रीय पद्धतियों के सहारे इस कथन की सत्यता की पुष्टि की।

लन्दन से प्रकाशित होने वाली साप्ताहिक विज्ञान पत्रिका *नेचर* में अग्रवाल एवं प्रकाश पावटे का लेख प्रकाशित हुआ और दुनियाभर के खगोल वैज्ञानिकों के बीच खलबली मच गई। गुरु की गति में उत्पन्न अनियमितता का कारण उसके निकट मौजूद कोई नई वस्तु ही है, यही उस लेख का सारांश था।

उस नवीन वस्तु का अस्थायी सम्बोधन 'क्ष' तय हुआ। उसके घनत्व, गति, गुरु से दूरी आदि की उस लेख में विस्तृत जानकारी दी गई थी। 'क्ष' को लेकर अनेक तर्क दिए जाने लगे। किसी वैज्ञानिक के अनुसार मंगल तथा गुरु के दरम्यान घूमने वाले अनेक एस्टरॉइड्स में से शायद कुछ इकट्ठा आ गए होंगे। दुनिया की तमाम वेधशालाओं में 'क्ष' को प्रत्यक्ष रूप से देखने की जैसे होड़ लग गई।

परन्तु कुछ भी दिखाई नहीं दिया।

***

इस बात को तीन साल बीत गए। 'क्ष' कहीं भी दिखाई नहीं दिया पर उसके अस्तित्व के प्रति वैज्ञानिकों का दृढ़ विश्वास बढ़ता चला गया। अन्ततः 'क्ष' की ओर एक आकाशयान भेजने का निर्णय लिया गया। यह बात इसलिए महत्वपूर्ण थी, क्योंकि सदियों से मान्यता प्राप्त गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्तों का भविष्य ही इस खोज पर निर्भर था। 'क्ष' को भारतीय वैज्ञानिकों ने खोजा था। इसलिए आकाशयान की उड़ान के लिए भारत के 'श्रीहरिकोट्टा' बेस को चुना गया और उस यान पर प्रवासी वैज्ञानिक के तौर पर जाने का सम्मान प्रकाश पावटे को मिला। उनके साथ एकमात्र सहप्रवासी के रूप में अन्तरिक्ष यान के अमरीकन कैप्टन जॉन फाकनर को चुना गया। वर्ल्ड स्पेस ऑर्गनाइज़ेशन (WSO) का भारत से

गुरु की ओर कूच करने वाला यह दसवाँ यान था। इसीलिए उसका सांकेतिक नाम डब्ल्यू.आई.जे.-10 था। प्रस्थान के लिए उचित दिन तय करने के पश्चात् डब्ल्यू.आई.जे.-10 की उड़ान की तैयारियाँ होने लगीं।

तीन वर्ष की इस अवधि के दरम्यान प्रकाश पावटे और संजय जोशी ने पीएच.डी. हासिल कर ली तथा अपने ही इंस्टिट्यूट में फेलो बन गए। संजय की शादी हुए एक साल बीत गया। प्रकाश अभी तक कुँवारा ही था पर दोनों की प्रगाढ़ दोस्ती पहले जैसी ही बनी रही। गपशप और दिल्लगी लगातार चलती रहती। अन्तरिक्ष की उड़ान के एक हफ्ते पहले संजय की नवजात बेटी का नामकरण समारोह था। प्रकाश बालिका के लिए एक बड़ा-सा खिलौना, टेडीबियर लेकर संजय के घर पहुँचा।

"भाभीजी, क्या नाम रखा बेटी का?" टेडीबियर देते हुए उसने पूछा।

"अनुपमा। गोद में लेंगे क्या इसे?"

"ना बाबा! दूर से ठीक है। शिशुओं को हाथों में सम्भालने से बहुत डरता हूँ मैं।"

"तब दूर से बताएँ, किस पर गई है हमारी बेटी?"

"आप दोनों पर!" प्रकाश ने डिप्लोमैटिक जवाब दिया। "बड़ी प्यारी है बच्ची, अट्ठारह-बीस साल बाद देखना, कितने रोमियो आगे-पीछे घूमेंगे इसके।"

"आप ही रुक जाइए, अट्ठारह-बीस साल। हम आपको ही दामाद चुन लेंगे।"

बच्ची पैदा हुई ही थी कि अनुपमा की माँ ने दामाद को खोजना आरम्भ कर दिया। पर, शादी की बात छिड़ते ही, फिर चाहे अट्ठारह साल के बाद की बात क्यों न हो, प्रकाश एकदम शरमा गया। उसने आनन-फानन में वहाँ से विदा ली और 'नौ-दो ग्यारह' हो गया।

"तुमने तो बेकार ही डरा दिया ब्रह्मचारी महाराज को!" संजय पत्नी से बोला।

* * *

डब्ल्यू.आई.जे.-10 की यात्रा नियत समय पर आरम्भ हो गई। पृथ्वी पर बने अनेक अन्तरिक्ष स्टेशनों से यान का सम्पर्क लगातार बना रहा। सन्देशों का आदान-प्रदान नियमित रूप से हो रहा था, परन्तु अन्तरिक्ष में गुरु के आसपास पहुँचने पर, अचानक परिस्थिति में काफी बदलाव नज़र आए। प्रकाश ने मिशन कंट्रोल की ओर निम्नलिखित सन्देश भेजा।

"लगता है, 'क्ष' के परिक्षेत्र में पहुँच गया हूँ। पर, अभी तक कुछ भी दिखाई नहीं दिया। हाँ, यह ज़रूर है कि 'क्ष' की दिशा में अनेक वस्तुएँ जैसे मीटिओराइट, एस्टरॉइड आदि बड़ी गति से जाते हुई दिखाई दे रहे हैं। यदि 'क्ष' में चमक होती तो शायद मैं यह कहता कि भगवद्गीता में दीए

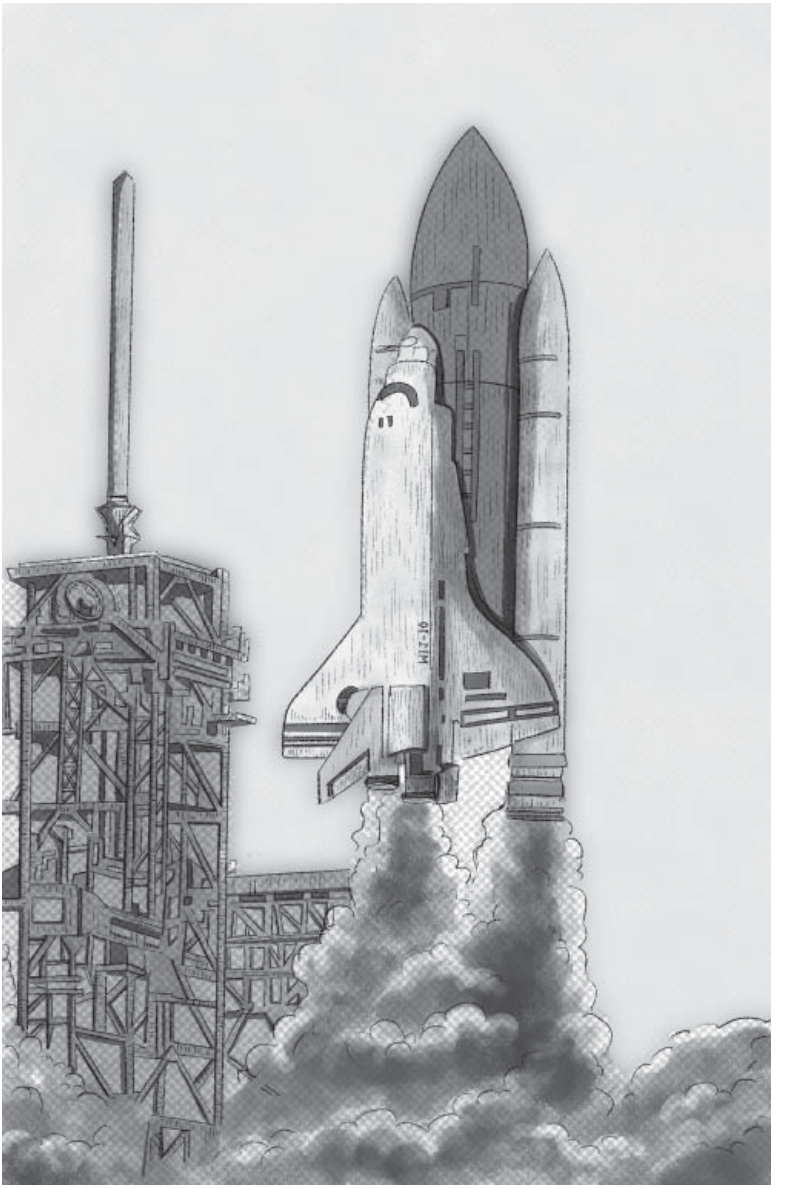

की लौ पर निछावर होने वाले पतंगों के वर्णन..."

"ठीक है, ठीक है। यूँ कवि कल्पनाओं में मत उलझो। तुम्हारा अगला कदम क्या होगा?" कंट्रोल ने टोका।

"अजी, नाभिक विस्फोट को देखकर ओपेनहायमर को गीता का स्मरण हो आया था परन्तु मुझे यहाँ जो दिखाई दे रहा है या जो दिखाई नहीं दे रहा, वह ऐसे विस्फोट से अधिक विचित्र है। मैं इसे पास से देखना चाहता हूँ।" प्रकाश का सन्देश था।

"स्वीकृति है पर यदि खतरा महसूस हो तो तुरन्त लौट आना होगा।"

"अवश्य! मैं डब्ल्यू.आई.जे.-10 का पूरा ध्यान रखूँगा।" प्रकाश द्वारा कंट्रोल को भेजा गया, यह आखिरी सन्देश था।

प्रकाश की आज्ञानुसार कैप्टन जॉन ने यान को 'क्ष' की दिशा में मोड़ दिया। धीरे-धीरे यान की गति तेज़ होती चली गई। "कैप्टन, इतनी तेज़ी-से मत चलो। हमें उसके अधिक निकट नहीं जाना है।" प्रकाश ने सचेत किया।

"मैंने तो इंजन कब से बन्द कर रखा है। पता नहीं, गति तेज़ क्यों हो गई!" गतिमापक की ओर चिन्ता से देखते हुए जॉन ने जवाब दिया। गतिमापक की सुई लगातार आगे बढ़ती जा रही थी।

प्रकाश के दिमाग में एक विचार बिजली की तरह कौंध गया और वह यान में स्थित कम्प्यूटर की ओर अत्यन्त तेज़ी-से दौड़ पड़ा। अभी तक उपयोग में न लाया हुआ एक प्रोग्राम उसने कम्प्यूटर में डाला। उस पर लेबल लगा था... 'कृष्ण विवर'।

साथ ही, यान की वेगवृद्धि की जानकारी को पंच करने के बाद कम्प्यूटर में पहुँचा दिया। पलभर में कम्प्यूटर ने छपा हुआ जवाब प्रस्तुत कर दिया। उसे पढ़ते ही प्रकाश तेज़ी-से जॉन के पास जा पहुँचा।

"जॉन, जॉन, 'क्ष' के बारे में जानकारी मिल गई है। मेरे हिसाब से अब बड़ी देर हो गई है। 'क्ष' तो कृष्ण विवर यानी ब्लैक होल है। और हम, बड़ी तेज़ी-से उसकी और खिंचते जा रहे हैं।"

कृष्ण विवर यानी एक बहुत ही आकुंचित पिण्ड जिसका गुरुत्वाकर्षण इतना अधिक होता है कि उसमें से प्रकाश भी बाहर की ओर निकल ही नहीं पाता और इसीलिए 'क्ष' पृथ्वी पर बसी वेधशालाओं को, या उसके निकट पहुँचे जॉन एवं प्रकाश को भी दिखाई नहीं दिया। आइन्स्टाइन का गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त कृष्ण विवर की पुष्टि करता था पर चन्द वैज्ञानिकों को ही इसकी जानकारी थी। अतः मुट्ठीभर वैज्ञानिकों ने ही 'क्ष' को कृष्ण विवर माना था, अन्य सभी ने इस सम्भावना को अनदेखा कर दिया।

जवाब क्या है, यह जानते हुए भी जॉन ने पूछा, "अब आगे क्या होगा?" "शायद हम 'क्ष' के जबड़े में जा गिरेंगे। आशा की एक धुँधली-सी किरण बाकी है। हमारी यात्रा का मार्ग 'क्ष' के केन्द्रबिन्दु से न होकर, उसके बाहरी घेरे पर निश्चित किया गया है। कम्प्यूटर निश्चित रूप से तो बता नहीं पाएगा परन्तु फिर भी मैं उसे पूछता हूँ। तब तक तुम कंट्रोल से सम्पर्क बनाओ।"

जॉन ने कंट्रोल को सन्देश भेजने के कई प्रयत्न किए पर कोई फायदा नहीं हुआ। कंट्रोल की ओर से तेज़ गति से उच्चारित शब्दों का प्रवाह चला आ रहा था जिन्हें समझ पाना मुश्किल था, तभी प्रकाश वहाँ आया। उसके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं।

"जॉन, कम्प्यूटर ने हमारी मृत्यु की भविष्यवाणी की है। उसके अनुसार हम 'क्ष' के पास पहुँचकर करीब दस लाख परिक्रमाएँ करेंगे और फिर इसके अन्दर समा जाएँगे। कंट्रोल से क्या सन्देश आया है?" जॉन ने उसे अपना अनुभव बताया। कंट्रोल से सम्पर्क टूट चुका था, सो अब सभी निर्णय स्वयं ही लेने होंगे, यह प्रकाश की समझ में आ गया।

तब प्रकाश बोला, "आशा की एक छोटी किरण बाकी है। हम कृष्ण विवर के नज़दीक एक अस्थिर गोलाकार कक्ष के निकट से गुज़रने वाले हैं। उस मार्ग की अस्थिरता का हमें लाभ उठाना होगा। उचित समय पर एक रॉकेट के फायर करने पर आसपास निर्मित अस्थिरता की वजह से शायद हमारा यान बाहर फेंका जा सकेगा। यह एक सम्भावना मात्र है। यदि ऐसा घटित होता है तो अच्छा ही है वरना दुनिया को राम-राम कहने का समय आ गया है। अब हमें शीत कक्ष में प्रवेश करना होगा।"

"शीत कक्ष में प्रवेश, किस लिए?" जॉन ने पूछा।

"देखो, जैसे-जैसे हम 'क्ष' के निकट पहुँचते जाएँगे, उसके गुरुत्वाकर्षण की टाइडल पावर हमें अधिकाधिक प्रतीत होगी। इसी टाइडल पावर की वजह से चन्द्र का गुरुत्वाकर्षण पृथ्वी पर समुद्र में ज्वार-भाटे के समय प्रतीत होता है।"

"अब कल्पना करो कि 'क्ष' की ओर जाते समय तुम्हारा सिर 'क्ष' के निकट है और पैर दूसरी ओर हैं। ऐसी स्थिति में 'क्ष' के गुरुत्वाकर्षण का जितना प्रभाव तुम्हारे सिर पर पड़ेगा, उतना पैरों पर नहीं। तब क्या होगा? ऐसे में शरीर पर सिर से पाँव तक खिंचाव पैदा होगा।" अब जॉन की बुद्धि काम करने लगी थी। "मेरा शरीर सिर से लेकर पैरों तक खींचा चला जाएगा," जॉन ने कहा।

"बिलकुल ठीक! और यह खिंचाव इतना अधिक होगा कि हम उसे सह नहीं पाएँगे। अब यदि हम शीत कक्ष में जमे होंगे तब शायद हमारा शरीर

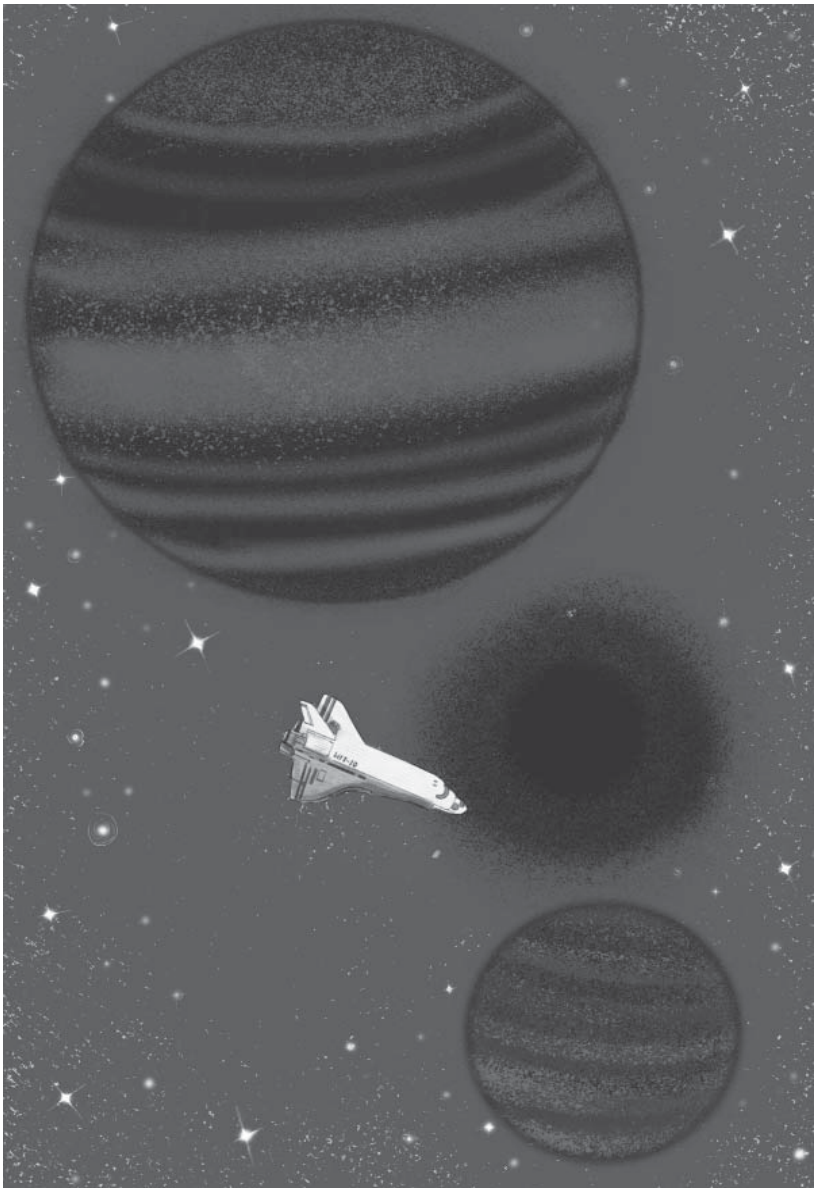

उस खिंचाव को सह ले।" प्रकाश ने समझाया।

"तुम आकाशयान को स्वयंचलित ऑटो-पायलट मोड में रख देना ताकि कम्प्यूटर उसे पृथ्वी की दिशा दिखा सके। यदि हमारा नसीब बलवान होगा तो बेस पर मौजूद लोग हमें जगा देंगे।" सारी तैयारी कर लेने के पश्चात् शीत कक्ष में प्रवेश करने से पहले, दोनों ने आकाश का विहंग दर्शन किया। आज तारों का समूह, विशेष तेजोमय हो चमक रहा है, ऐसा उन्हें प्रतीत हुआ।

क्या उनके लिए दुनिया का यही अन्तिम दर्शन था?

***

जब श्रीहरिकोट्टा बेस पर डब्ल्यू. आइ.जे.-10 नामक आकाशयान उतरा तो वहाँ उपस्थित सभी वैज्ञानिक चकित रह गए। इस नाम के किसी यान का उन्हें स्मरण तक न था। खास बात तो यह थी कि इस यान के आने की कोई पूर्व-सूचना भी न मिली थी। इसलिए इस अचानक आए अनिमंत्रित यान की गहरी जाँच-पड़ताल की गई। अन्दर गहरी नींद में डूबे दोनों कुम्भकर्णों को बाहर निकाला गया। उन्हें मेक्सिमम सिक्युरिटी मेडिकल सेक्शन (एम. एस.एम.एस.) में भेज दिया गया। बेस पर मौजूद सभी लोग इन दोनों के नाम तथा चेहरों से पूर्णतया अनभिज्ञ थे।

"ज़रा आराम-से। डॉक्टर साहब ने आपको हिलने-डुलने तथा सोच-विचार करने की मनाही की है। एम.एस.एम.एस. की परिचारिका अनुपमा, प्रकाश से कह रही थी। यहाँ के चीफ वैज्ञानिक जल्दी ही आप से भेंट करेंगे। उन्हीं से कह दीजिएगा, सारा कुछ!"

"मेरे अपने एक-दो मित्रों को तो कम-से-कम फोन करने दीजिए। मैं कुशल हूँ, इतना तो कहने दें। देखिए, मेरी यह ऑटोमैटिक घड़ी बता रही है कि मैं पूरे तीन साल बाद लौटा हूँ। वे लोग चिन्ता में पड़ गए होंगे कि मैं कहाँ गायब हो गया।"

"तीन साल?" प्रकाश की बात सुनकर बेस के प्रमुख वैज्ञानिक डॉ. रामास्वामी ने पूछा जो कमरे में घुस रहे थे। "तीन वर्ष पहले, यहाँ से कोई भी मानव-यान नहीं भेजे गए। बल्कि पाँच साल से हम स्वयंचलित यंत्रों वाले मानव रहित यान ही अन्तरिक्ष में भेज रहे हैं।"

"बिलकुल असम्भव! आप अपने रिकॉर्ड की जाँच करें।" प्रकाश आश्चर्य से चीखा। मेरी घड़ी के अनुसार मैं तथा जॉन फाकनर, ठीक तीन वर्ष पन्द्रह दिन पहले गुरु की दिशा में निकल पड़े थे। जॉन से पूछें अथवा प्रोफेसर रमेश अग्रवालजी से सम्पर्क करें ताकि आप को यकीन हो जाए।"

"प्रोफेसर साहब तो अब रिटायर

हो गए हैं। पर, हम उनसे सम्पर्क स्थापित करने की कोशिश करेंगे।" रामास्वामी बोले।

प्रकाश का दिमाग चकरा गया। जिस समय वह डब्ल्यू.आई.जे.-10 से प्रवास हेतु निकला था तब अग्रवालजी चालीस की कगार पर थे। उसने डरते-डरते पूछा, "कौन-सा सन् चल रहा है?"

इसके जवाब में रामास्वामीजी ने उसके हाथ में उसी दिन का अखबार थमा दिया। उस पर लिखी तारीख को पढ़कर प्रकाश को गश आ गया। वह पूरे बीस वर्षों बाद पृथ्वी पर लौटा था।

***

प्रकाश को सामान्य होने में करीब दो हफ्ते लगे। इस कार्य में नर्स अनुपमा बहुत सहायक सिद्ध हुई और उस ब्रह्मचारी के विकेट डाउन होने के आसार नज़र आने लगे। प्रेम की इस आँखमिचोली में अन्तरिक्ष-यात्रा का नाम भी न निकले, डॉक्टर द्वारा दी गई इस सख्त हिदायत का अनुपमा ने पूरे मनोयोग से पालन किया। प्रकाश के स्वस्थ होते ही रामास्वामीजी ने उसकी अग्रवालजी से भेंट करवाई। अग्रवालजी ने प्रकाश के सकुशल लौटने के लिए सर्वप्रथम उसे बधाई दी तथा उसे अनुकूल वधू के मिल जाने की भी बधाई दे डाली। फिर उन्होंने कालहरण का खुलासा किया। यह सब कृष्ण विवर के प्रखर गुरुत्वाकर्षण का ही सारा कमाल था। निद्रावस्था में कृष्ण विवर के चारों ओर चक्कर लगाते समय कालमापन

के अनुसार एक सेकण्ड की अवधि ही पर्याप्त थी क्योंकि अत्यन्त तीव्र गुरुत्वाकर्षण ने उनकी काल की गति को करीब-करीब शून्य कर दिया था। उस एक सेकण्ड की अवधि में बाकी की दुनिया सत्रह साल आगे निकल गई। जॉन तथा प्रकाश की बीस वर्षीय तरुणाई वैसी ही बनी रही। आइन्स्टाइन की रिलेटिविटी के जीते-जागते उदाहरण बन गए थे ये दोनों।

"संजय कहाँ है? मुझे देखकर उसे ज़बर्दस्त झटका लगेगा।" हँसता हुआ प्रकाश बोला।

"संजय...कौन संजय?" अनुपमा ने पूछा।

"संजय जोशी, मेरा परम मित्र। हम दोनों एक ही इंस्टिट्यूट में अनुसन्धान का काम कर रहे थे। कई बार मेरा-उसका विवाद... अरे! रो क्यों रही हो?"

"वे मेरे पिता थे। माँ और उनका विमान दुर्घटना में देहान्त हो गया... और मैं अनाथ हो गई।" अनुपमा ने सुबकते हुए कहा।

अनुपमा की माँ द्वारा किया गया 'दामाद अनुसन्धान' आखिरकार सफल हो गया था... कृष्ण विवर की कृपा से।

(1974)

जयंत विष्णु नारलीकर (1938): प्रबुद्ध वैज्ञानिक और विज्ञान कथाकार। कैंब्रिज से गणित में डिग्रियाँ हासिल करने के बाद उन्होंने खगोल-विद्या और खगोल-भौतिकी में विशेष प्राविणय प्राप्त किया। किंग्ज़ कॉलेज के फेलो और इंस्टिट्यूट ऑफ थिओरेटिकल एस्ट्रोनॉमी के संस्थापक सदस्य के रूप में कुछ समय कैंब्रिज में रहे। IUCAA (Inter-University Centre for Astronomy and Astrophysics), पुणे के संस्थापक सदस्य। नारलीकर 'पद्मभूषण' और 'पद्मविभूषण' सहित कई राष्ट्रीय व अर्न्तराष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित हैं।

सभी चित्र: अदिति दीक्षित: दिल्ली में स्थित लेखिका, फिल्म निर्माता, चित्रकार और स्टॉप मोशन एनिमेटर हैं। उनकी स्टॉप मोशन शॉर्ट फिल्म *डेज़ी* वर्तमान में दुनियाभर में 25 से अधिक फेस्टिवल में नामांकित हुई है और उसे 6 फेस्टिवल में सर्वश्रेष्ठ छात्र स्टॉप मोशन शॉर्ट का पुरस्कार दिया गया है। उन्होंने भारत की पहली वयस्क एनिमेटेड व्यंग्य श्रृंखला *आपकी पूजिता* के दो एपिसोड भी लिखे और निर्देशित किए हैं।

मराठी से हिन्दी अनुवाद: मीरा नांदगाँवकर।

पठनीयता को बेहतर करने के लिए इस अनुवाद को परिष्कृत किया गया है।

यह कहानी सन् 2013 में *विज्ञान प्रसार* द्वारा प्रकाशित जयंत विष्णु नारलीकर के विज्ञान कथाओं के संकलन *कृष्ण विवर और अन्य विज्ञान कथाएँ* से साभार।

सवालीराम

सवाल: बाल सफेद क्यों होते हैं?

– सावन यादव, होशंगाबाद, म.प्र.

जवाब: होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम के दौरान सवालीराम से पूछा जाने वाला यह काफी मशहूर सवाल हुआ करता था। काफी बच्चे पूछते थे – बाल सफेद क्यों होते हैं? या थोड़ा फर्क सवाल होता था – आजकल कम उम्र में लड़के-लड़कियों के बाल सफेद क्यों हो जाते हैं?

जैसा कि हमारी कोशिश होती है कि सवालीराम के जवाबों में सवाल की जड़ तक जाकर जवाब दिए जाएँ, तो इस बार हम बालों की जड़ तक जाएँगे!

यह बात तो तय है कि सिर के बाल हमारे लिए काफी मायने रखते हैं। हम इन्हें नियमित रूप से धोने, तेल लगाने, सँवारने, घुँघराले बनाने या सीधे करवाने, सुनहरे-हरे-नीले रंग में रंगवाने, विविध हेयर स्टाइल बनाने आदि पर काफी ध्यान देते हैं। लेकिन दूसरी तरफ यह भी सच्चाई है कि बालों के सफेद होने पर सभी लोग उतने परेशान नहीं दिखते कि हाय-हाय ये तो बुढ़ापे की निशानी है। फिल्मी कलाकार या ऐसे किन्हीं अन्य व्यवसाय से जुड़े लोगों के लिए चिरयुवा दिखने के दबाव में बालों को डाइ करने जैसे विकल्प को चुनना पड़ता होगा। ऐसा ही युवा दिखने या खूबसूरत दिखने की चाह में बहुत-से अन्य लोग भी करते हैं।

बालों की संरचना

चलिए, जवाब की ओर बढ़ते हैं। यदि हमने यह जान लिया कि बाल काले क्यों होते हैं तो यह समझना भी सहज हो जाएगा कि बाल सफेद क्यों हो जाते हैं। यहाँ कुछ बातों को पहले समझ लेते हैं जैसे जब आप पैदा होते हैं तब आपके बाल काले होंगे या भूरे होंगे, सीधे होंगे या घुँघराले होंगे आदि गुण आपके माता-पिता से मिलते हैं यानी ये तमाम गुणधर्म अनुवांशिक हैं। एक उम्र के बाद बालों का घनापन कम होना, बाल पतले होना या बाल सफेद होना स्वाभाविक प्रक्रिया है।

बालों के रंग को समझने के लिए बालों की संरचना पर एक नज़र डाल लेना फायदेमन्द होगा। अपने हाथ या पैर के दो-चार बालों को एक-साथ पकड़कर हल्के-से खींचिए। आप देखेंगे कि उन बालों के साथ आपकी

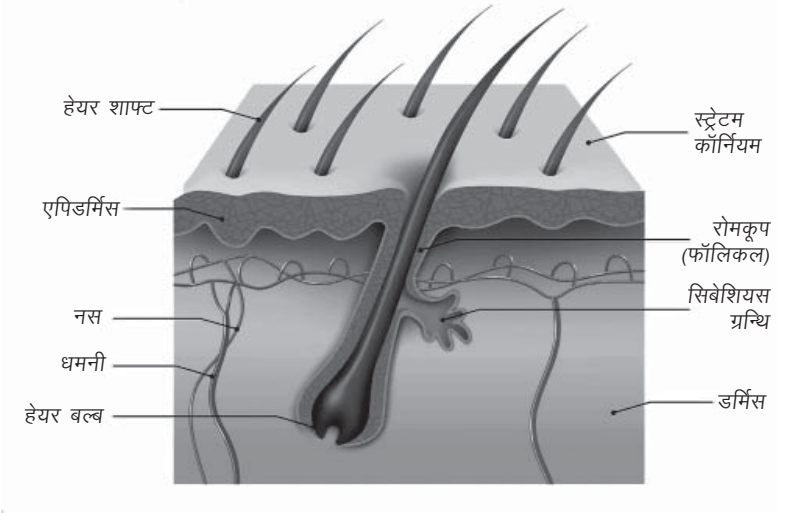

चित्र-1: *बाल की संरचना - चमड़ी के जिस गड्ढे (पुटक या फॉलिकल) में बाल धँसा होता है, उस गड्ढे की दीवार प्रमुखतः चमड़ी की एपिडरमिस का हिस्सा ही होती है। नीचे की ओर जहाँ बाल की जड़ मौजूद होती है, वहाँ बल्ब जैसा उभार बना होता है। इस एकदम नीचे वाले भाग में ही वे कोशिकाएँ पाई जाती हैं जिनसे बाल की कोशिकाएँ उत्पन्न होती हैं। इसकी हर कोशिका में केरेटिन नामक प्रोटीन शामिल होता जाता है और मेलेनोसाइट कोशिकाएँ भी इन कोशिकाओं के बनते ही उनमें रंजक के कण भर देती हैं। पुटक के ऊपरी हिस्से में आकर तेल ग्रन्थियाँ (सिबेशियस ग्लैंड) भी खुलती हैं जो तेल स्रावित करती हैं जिससे बाहर की ओर बढ़ रहे बाल पर तेल की परत भी चढ़ जाती है। त्वचा की सतह के नीचे तो बाल लगभग जीवित रचना ही होती है, मगर आगे बढ़ते-बढ़ते एपिडरमिस के ऊपर आते हुए यह मृत कोशिकाओं का ढेर ही बच जाता है।*

त्वचा या चमड़ी भी हल्के-से ऊपर खिंच जाती है। थोड़ा और ज़ोर लगाकर खींचने पर बालों को तो कुछ नहीं होता लेकिन त्वचा में दर्द का एहसास होता है। त्वचा पर पाए जाने वाले बालों को आप ज़मीन पर गड़ी खूँटी की तरह मान सकते हैं। त्वचा के जिस छेदनुमा गड्ढे में बाल पाया जाता है, उसे पुटक (follicle) कहते हैं। बालों की जड़ त्वचा के जिस हिस्से में मौजूद है, उसे डर्मिस (dermis) कहते हैं। यह त्वचा की ऊपरी परत एपिडर्मिस (epidermis) से ठीक नीचे की परत है। यहीं पर पुटक के भीतर धँसी हुई बाल की जड़ तथा जड़ के आसपास की विशेष संरचनाएँ मिलकर बाल को निश्चित आकार और रंग देती हैं।

बाल की जड़ों के पास वे कोशिकाएँ होती हैं जो बाल की कोशिकाओं का

क्या बालों का सफेद होना लिंग आधारित है?

अक्सर ऐसा कहा जाता है कि पुरुषों के मुकाबले महिलाओं के बाल देर से सफेद होना शुरू होते हैं। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि बालों का सफेद होना लिंग आधारित है। इस मान्यता में वास्तव में कितनी सच्चाई है, यह तो नहीं मालूम लेकिन *नेचर* पत्रिका (16 अप्रैल, 2023) में प्रकाशित एक लेख में चूहों पर किए गए प्रयोग के हवाले से कहा गया है कि मेलेनोसाइट स्टेम कोशिकाएँ जो चूहों या इन्सान में त्वचा और बालों को रंगत देती हैं, शरीर की अन्य स्टेम कोशिकाओं के मुकाबले अपना काम पहले बन्द करने लगती हैं। चूहों के साथ किए गए प्रयोग में देखा गया कि जब कुछ स्टेम कोशिकाएँ थम जाती हैं तब चूहों के बाल सफेद होने लगते हैं। रंजक बनाने वाली स्टेम कोशिकाओं का गतिशील बने रहना आवश्यक है वरना बाल सफेद हो जाएँगे। क्या यह बात इन्सानों पर भी लागू होती है और क्या इसमें लिंग आधारित अन्तर हो सकता है? अभी इन सवालों के जवाब मिलना बाकी हैं।

सन् 2022 में कोलोरेडो स्टेट यूनिवर्सिटी से एक लेख - दि साइन्स ऑफ ग्रे हेयर - प्रकाशित हुआ था। इसके मुताबिक बालों के रोमकूप (फॉलिकल्स) में दो तरह के मेलेनिन अणु मौजूद होते हैं। इनमें से एक है, यूमेलेनिन। जब तक बालों की कोशिकाओं में यूमेलेनिन पर्याप्त रूप से मौजूद रहता है तब तक बालों का रंग काला बना रहता है। यूमेलेनिन की मात्रा कम होने पर बाल सुनहरे (ब्लॉण्ड) रंग के होने लगते हैं, फिर धीरे-धीरे सफेद।

- विविध स्रोतों से संकलित

निर्माण करती हैं। बाल की ये नव-निर्मित कोशिकाएँ फिर ऊपर की ओर खिसकती जाती हैं। जैसे ही बाल की एक कोशिका बनती है, उसी समय बाल की जड़ के आसपास बाल में रंग भरने वाली मेलेनोसाइट नामक कोशिकाएँ उसमें रंजक के कण भर देती हैं। मेलेनोसाइट कोशिकाओं का प्रमुख काम है, रंजक पदार्थ (मेलेनिन या मेलेनिन के अन्य प्रकार जिनमें कोई और रसायन जैसे गन्धक या लोहा हो) को बालों में एक विशेष मात्रा में डालना। अगर बाल का अनुवांशिक प्रकार काला हुआ तो रंजक पदार्थ सिर्फ मेलेनिन ही होगा। यदि अनुवांशिक रूप से बालों का रंग भूरा है तो मेलेनिन का वह प्रकार भरा जाएगा जिसमें गन्धक या लौह-कण मिले होते हैं।

वैसे तो मेलेनोसाइट कोशिकाएँ अपना कार्य सालों-साल जारी रखती हैं। इसलिए बालों का रंग भी निरन्तर काला बना रहता है। अगर किन्हीं कारणों से मेलेनिन बनने की क्रिया धीमी हो जाए या बन्द हो जाए तो बालों में यह असर पहुँचने और

बालों का सफेद होना और तनाव का सहसम्बन्ध

बालों के सफेद होने के पीछे एक वजह इन्सान का तनाव में होना बताया जाता है। हारवर्ड स्टेम सेल रिसर्च इंस्टीट्यूट ने चूहों के साथ कुछ प्रयोग किए। सबसे पहले शोध टीम ने मेलेनोसाइट (जो मेलेनिन रंजक युक्त कोशिकाओं का निर्माण करती है) पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। ये मेलेनोसाइट प्रत्येक बाल में मेलेनिन पहुँचाती हैं, जिनका रंग काला होता है।

शोधकर्ताओं ने चूहों को उनकी कद-काठी के मुताबिक तनाव दिया। जैसे उनके पिंजरों को अलग-अलग कोणों पर झुकाकर रखा गया, उनकी सोने की जगह को गीला किया गया या सारी रात रोशनी चालू रखी गई। शोधकर्ताओं ने पाया कि तनाव के कारण वास्तव में चूहों के बाल सफेद हो जाते हैं।

एक विचार यह बना कि शायद चूहों में तनाव बढ़ने पर प्रतिरक्षातन्त्र की कोशिकाएँ मेलेनोसाइट स्टेम सेल पर आक्रमण कर रही हैं जिसकी वजह से मेलेनोसाइट की संख्या घट रही है। जिन चूहों में प्रतिरक्षा कोशिकाएँ नहीं थीं, उनके भी बाल सफेद हुए थे। यानी तनाव की वजह से बाल सफेद होने में प्रतिरक्षा कोशिकाओं का कोई हाथ नहीं है।

एक अन्य विचार था, सम्भव है कि कॉर्टिसोल हॉर्मोन की कुछ भूमिका हो। कॉर्टिसोल हॉर्मोन तनाव के समय बनता है। इस शोध के एक कंट्रोल एक्सपेरिमेंट में कुछ ऐसे चूहों को शामिल किया गया जिनकी कॉर्टिसोल हॉर्मोन बनाने वाली ग्रन्थि निकाल दी गई थी। इस बार भी देखा गया कि कॉर्टिसोल हॉर्मोन न बनाने वाले चूहों के बाल भी सफेद हुए।

इसके बाद शोधकर्ताओं का ध्यान अनुकम्पी तंत्रिका तंत्र (sympathetic nervous system) पर गया। यही तंत्रिका तंत्र हॉर्मोन के प्रभाव से तनाव जनित व्यवहारों और 'लड़ो या भागो' प्रतिक्रिया को अंजाम देता है। इन अनुकम्पी तंत्रिकाओं के सिरे हर रोम के आसपास लिपटे होते हैं। जब टीम ने चूहों में इन कनेक्शन को काट दिया तो जल्दी ही चूहों के बाल सफेद हो गए।

अभी यह स्पष्ट नहीं है कि क्या उम्र के साथ बाल सफेद होने की प्रक्रिया में भी अनुकम्पी तंत्रिकाओं की भूमिका है लेकिन शोधकर्ताओं का खयाल है कि सफेद बालों के सन्दर्भ में कुछ आशा की किरण नज़र आने लगी है।

- विविध स्रोतों से संकलित

दिखने में थोड़ा समय तो लगेगा। सामान्यतः इन्सान की उम्र बढ़ने पर मेलेनोसाइट कोशिकाएँ निष्क्रिय होती चली जाती हैं जिसकी वजह से कुछ बालों की कोशिकाओं में रंजक पदार्थ नहीं भरा जाता और काले बालों के

बीच में सफेद बालों की झलक दिखाई देने लगती है। जब और अधिक बालों में रंजक पदार्थ भरना बन्द हो जाता है तो सिर पर सफेद बालों की तादाद बढ़ती जाती है।

असमय बालों का सफेद होना

कई बार लोग यह भी शिकायत करते हैं कि कम उम्र में या असमय बाल पक रहे हैं, या हमने अमुक बीमारी का इलाज करवाया तो हमारे बाल पकने लगे, या अमुक बीमारी के कारण हमारे बाल पक गए। कई बार लोग यह कहते हुए भी पाए गए हैं कि अत्याधिक तनाव या स्ट्रेस की वजह से उनके बाल सफेद हो रहे हैं। असमय बाल पकने यानी सफेद होने की बात करें तो सम्भव है कि कुछ बीमारियों की वजह से बाल पक या झड़ भी सकते हैं। कुपोषण से भी बाल पक सकते हैं या उनका रंग भूरा हो सकता है। मगर यह निश्चित नहीं है कि बीमारियों का अलग-अलग लोगों के बालों पर कितना असर पड़ेगा। हो सकता है, किसी के बालों पर बेहद कम असर हो और किसी के बालों पर काफी असर पड़े।

बालों पर अभी बहुत-से शोधकार्य चल रहे हैं जिनसे उम्मीद है कि बालों के सफेद होने की प्रक्रिया पर और प्रकाश पड़ेगा।

यह जवाब माधव केलकर द्वारा अनु गुप्ता के सहयोग से लिखा गया है।

माधव केलकर: *संदर्भ* पत्रिका से सम्बद्ध हैं।

— — — — — —

इस बार का सवाल: हमें गुदगुदी क्यों होती है?

- पलाश सोनी, कक्षा-7, भोपाल, म.प्र.

आप हमें अपने जवाब sandarbh@eklavya.in पर भेज सकते हैं।

प्रकाशित जवाब देने वाले शिक्षकों, विद्यार्थियों एवं अन्य को पुस्तकों का गिफ्ट वाउचर भेजा जाएगा जिससे वे पिटाराकार्ट से अपनी मनपसन्द किताबें खरीद सकते हैं।

1870 के दशक में अज्ञात फोटोग्राफर द्वारा खींची गई साम्भर झील, राजस्थान से कुछ तस्वीरें।
भारत में नमक के इतिहास के बारे में जानने के लिए पढ़ें लेख पृष्ठ 57 पर।

नमक ढोते ऊँटों की कतार

बोरियों में नमक भरकर उनका वज़न किया जाना

मज़दूरों के काम का मापन और नमक का भण्डारण

झील के तल से नमक निकाला जाना

RNI No.: MPHIN/2007/20203

प्रकाशक, मुद्रक, टुलटुल बिस्वास द्वारा निदेशक एकलव्य फाउण्डेशन की ओर से, एकलव्य, जमनालाल बजाज परिसर, जाटखेड़ी, भोपाल - 462 026 (म.प्र.) से प्रकाशित तथा भण्डारी प्रेस, ई-2/111, अरेरा कॉलोनी, भोपाल - 462 016 (म.प्र.) से मुद्रित, सम्पादक: राजेश खिंदरी।